युवराज

श्रीमद्वरदराजाचार्यप्रणीता

लघुसिद्धान्तकौमुदी

विभक्त्यर्थ (कारक) प्रकरण एवं स्त्री प्रत्यय
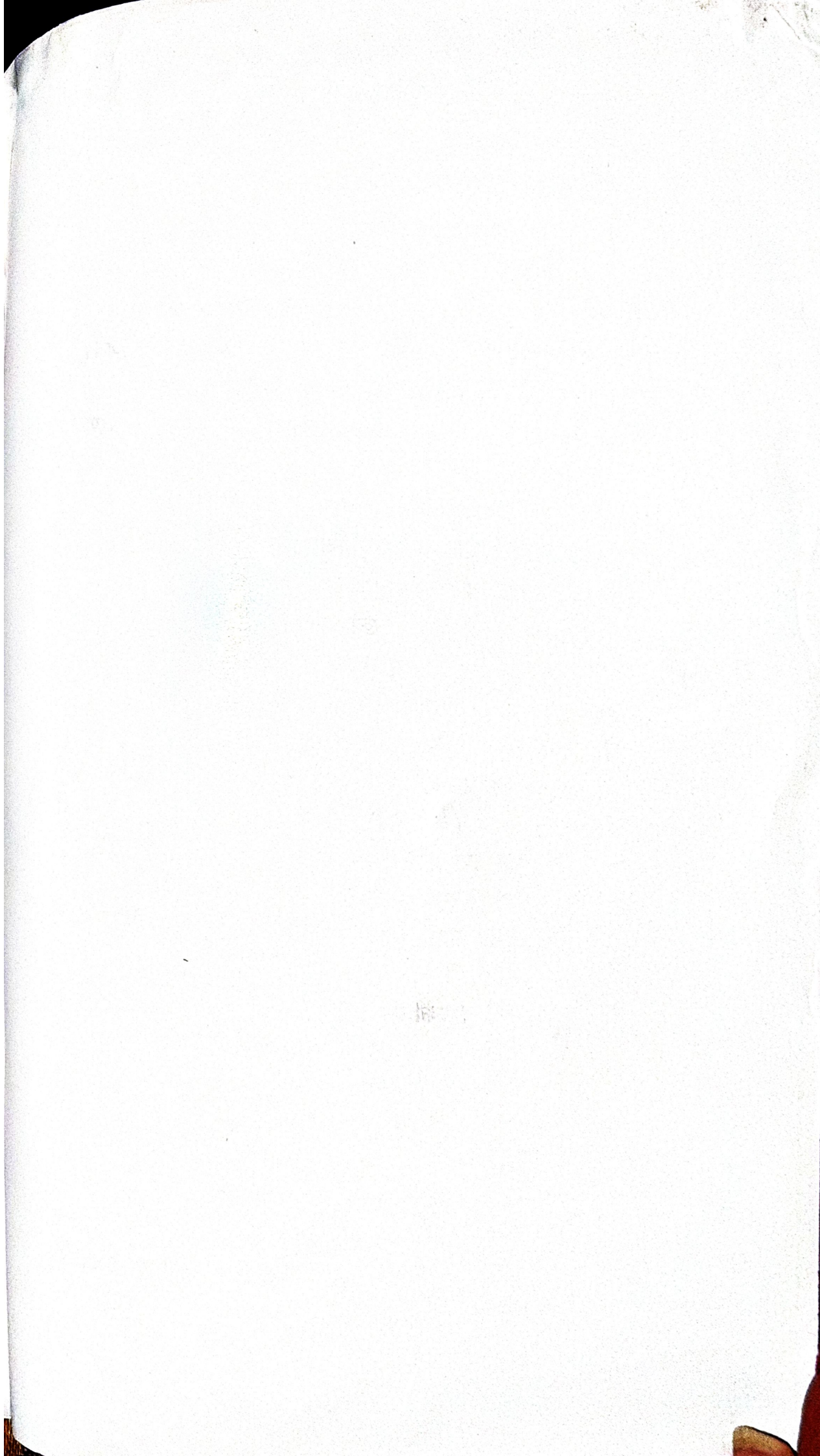
[बी० ए०, एम० ए०, समकक्ष संस्कृत एवं
प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए]

श्रीवरदराजाचार्यविरचिता

लघुसिद्धान्तकौमुदी

[विभक्त्यर्थ प्रकरणम् (कारक प्रकरणम्) एवं स्त्री प्रत्यय]

(अनुवृत्तिक्रम, सूत्रार्थ, भावार्थ, विस्तृत हिन्दी व्याख्या, प्रयोगसिद्धि,
बहुविकल्पीय, लघुउत्तरीय एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्नों सहित)

छात्रोपयोगी एवं परीक्षोपयोगी संस्करण

व्याख्याकर्त्री

डॉ० (श्रीमती) मधुर लता द्विवेदी

एम० ए०, पी-एच० डी०
असि० प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय
कोंच (जालौन) उत्तर प्रदेश

युवराज पब्लिकेशन्स, आगरा–2

लघुसिद्धान्तकौमुदी

(विभक्त्यर्थ प्रकरणम् (कारक प्रकरणम्) एवं स्त्री प्रत्यय)

व्याख्याकर्त्री

डॉ० मधुर लता द्विवेदी

ISBN : 978–93–84506–39–1

संस्करण : 2021

मूल्य : पिच्यहत्तर रुपये मात्र (Rs. : 75.00)

प्रकाशक

युवराज पब्लिकेशन्स

संस्कृत साहित्य के प्रकाशक एवं सप्लायर्स

42, लताकुंज, मथुरा रोड, आगरा—282002

मोबाईल : 9012085100, 8273490793

E-mail : yuvrajpublications@gmail.com

मुद्रक

पी० सी० प्रिन्टर्स, आगरा

प्राक्कथन

संस्कृत विश्व की समस्त भाषाओं में सर्वप्राचीन भाषा है। प्राचीन काल में संस्कृत का विकास चरम-सीमा पर था, किन्तु उत्तरोत्तर इसका ह्रास भी हुआ है। ह्रास और विकास तो प्रकृति का नियम है। संस्कृत के समग्र ज्ञान की कुञ्जी है व्याकरण। व्याकरण का भाषा से घनिष्ट सम्बन्ध है। भाषा की सार्थक इकाई 'शब्द' के प्रकृति-प्रत्यय आदि का विवेचन ही तो व्याकरण है—'व्याक्रियन्ते विविच्यन्ते प्रकृति-प्रत्ययादयोऽनेन अस्मिन् वा तद् व्याकरणम्' (वि + आङ + कृ + ल्युट्)। व्याकरण का उद्देश्य है, प्रकृति-प्रत्यय आदि के विवेचन द्वारा शब्द के वास्तविक या सही रूप का स्पष्ट निर्धारण करके असाधु-शब्द-निराकरण-पूर्वक शिष्टजनोचित शब्द प्रयोग का ज्ञान कराना।

महर्षि पाणिनि ने संस्कृत व्याकरण की 'अष्टाध्यायी' नामक ग्रन्थ की रचना करके भाषा को सुव्यवस्थित किया है। महर्षि कात्यायन और महाभाष्यकार पतञ्जलि ने इसे और भी बोधगम्य बना दिया है। प्राचीन प्रणाली को सुगम बनाने के लिए 'महर्षि भट्टोजिदीक्षित' की 'सिद्धान्त कौमुदी' और उनके शिष्य 'वरदराजाचार्य' की 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' नामक ग्रन्थ की रचना हुई। आज के बदलते हुए परिवेश में छात्र-छात्राओं के अध्ययन के लिए बोधगम्य और रुचिपूर्ण बनाने के लिए मैंने विभक्त्यर्थ प्रकरणम् (कारक प्रकरणम्) और 'स्त्री प्रत्यय' के सूत्रों के साथ ही वृत्ति, अर्थ, व्याख्या और उदाहरण को एक साथ सम्मिलित किया है जिससे छात्रों का हित हो सके मेरे इस प्रयास से सभी पठन-पाठन करने वाले छात्र-छात्राएँ अवश्य ही लाभान्वित हों यही मेरी ईश्वर से प्रार्थना है।

इस पुस्तक के लेखन में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से जिनसे मैं लाभान्वित हुई, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा कर्त्तव्य है। सर्वप्रथम वीणा-वादिनी माँ भारती को नमन करते हुए शुभाशीष चाहती हूँ कि हमारे मन-मन्दिर को निरन्तर प्रकाशित करती रहें और मेरे इस कार्य को निर्बाध्य पूर्ण करने में सहायता प्रदान करें। मेरे इस कार्य में अध्ययन काल से ही प्रेरणास्रोत रहे संस्कृत जगत के प्रकाण्ड विद्वान् गुरुवर डॉ० के० एन० द्विवेदी, श्री सत्यनारायण बुधैलिया, डॉ० ओ० पी० शास्त्री, पं० राघवराम शास्त्री का हृदय से नमन करती हूँ, क्योंकि आज मैं जो कुछ भी हूँ वह उन्हीं का अथक परिश्रम, सतत सहयोग एवं आर्शीवाद का परिणाम है।

मथुरा प्रसाद महाविद्यालय के प्राचार्य गुरुवर डॉ० टी० आर० निरञ्जन को भी मैं हृदय से नमन करती हूँ जिन्होंने मेरे इस कार्य में पदे-पदे सहयोग किया।

इस पुस्तक के लेखन काल में सहयोग करने वाले मेरे पितृतुल्य श्वसुर जी श्री तुलसीराम द्विवेदी और श्री भगवानदास द्विवेदी एवं श्वश्रू श्रीमती शान्ती देवी और श्री मती माया देवी को कोटिशः नमन करती हूँ। मैं अपने पूज्यनीय पति एडवोकेट श्री संजीव कुमार द्विवेदी जी के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य को और भी सुबोध एवं सरस बनाने के लिए अपना अमूल्य श्रम प्रदान किया है।

मैं अपने पूज्यनीय पिता श्री विष्णुदेव शर्मा, माँ श्रीमती विजया देवी शर्मा और भ्राता सत्येश कुमार शर्मा को कोटिशः नमन करती हूँ।

मेरे इस कार्य में सहयोग करने वाली बहिन डॉ० अल्पनासिंह असि० प्रोफेसर समाजशास्त्र, मेरे पुत्रद्वय स्वप्निल द्विवेदी और संस्कार द्विवेदी, भतीजी साक्षी शर्मा, तैजस् की भी प्रशंसा करते हुए माँ भारती से प्रार्थना करती हूँ कि अपनी कृपा दृष्टि उन पर सदैव बनाये रहें जिससे उनका मार्ग प्रशस्त हो।

मैं युवराज पब्लिकेशन्स, आगरा का हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जो छात्र-छात्राओं के हितार्थ सरल, सरस और सुबोध पुस्तकों का प्रकाशन कर उनके पथ-प्रदर्शक बनते है। आपका यह कार्य अवश्य ही साधुवाद के पात्र है।

संस्कृत व्याकरण के विभक्त्यर्थ प्रकरणम् (कारक प्रकरणम्) और स्त्रीप्रत्यय से विद्यार्थीगण को लाभान्वित करने के लिए मेरा जो प्रयास है वो सार्थक हो, ऐसी मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ।

इस पुस्तक में यदि कोई त्रुटि रह जाती है तो विद्वद्वृन्द अवश्य ही मेरा मार्गदर्शन करेंगे। पूर्व विद्वानों के ग्रन्थों से और नव्य विद्वानों के सहयोग से ही यह लेखन कार्य सम्भव हो सका अतः आप सभी विद्वानों को मेरा कोटिशः प्रणाम। अन्त में—

"कर्पूरगौरं करुणावतारं, संसारसारं भुजगेन्द्र हारम्।
सदावसन्तं हृदयारविन्दे, भवं भवानी सहितं नमामि।।"

"इति शुभम्"

"रक्षाबन्धन
दिनांक—७ जुलाई, २०१७

—मधुर लता द्विवेदी

विषयानुक्रमणिका

सिद्धान्तकौमुदी के आधार पर महत्त्वपूर्ण सूत्रों का विभक्ति वर्णन

✤

श्री रामः शरणं नमः

विषय प्रवेश

"यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र! व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलः शकलः सकृत्छकृत्।।"

जिस शास्त्र से शुद्धता का ज्ञान होता है, उस शास्त्र का नाम व्याकरण है।

'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेनेति शब्द ज्ञानजनकं शास्त्रं व्याकरणम्'। भाष्यकार ने व्याकरण का ही दूसरा नाम शब्दानुशासन रखा है। (अनुशिष्यन्ते = अपशब्देभ्यो विविच्य कथ्यन्ते साधुशब्दा अनेनेत्यनुशासनं नाम।)

संस्कृत भाषा में व्याकरण का स्थान सर्वोपरि है। व्याकरण ज्ञान के बिना संस्कृत वाङ्मय का ज्ञान करना असम्भव है। इसी कारण इसकी गणना वेदाङ्गों में होती है। इसे वेद का मुख्य रूप प्रधान अङ्ग माना जाता है।

"मुखं व्याकरणं तस्य ज्योतिषं नेत्रमुच्यते।
निरुक्तं श्रोत्रमुद्दिष्टं छन्दसां विचितिः पदे।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य हस्तौ कल्पान् प्रचक्षते।।"

महर्षि पतञ्जलि ने भी "ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च" तथा "षट्स्वंगेषु प्रधानं व्याकरणम्, प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति" इत्यादि कहकर व्याकरण के अध्ययन पर बल दिया है। ये यथार्थ है कि व्याकरण ज्ञान के बिना वेद, वेदान्त, पुराण, काव्य आदि दूसरे शास्त्रों का ज्ञान नहीं किया जा सकता कहा भी गया है—

"यो वेद वेदवदनं सदनं हि सम्यग्,
ब्राह्म्गाः स वेदमपि वेद किमन्यशास्त्रम्।
यस्मादतः प्रथममेतदधीत्य विद्वान्,
शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेऽधिकारी।।"

इस प्रकार शास्त्रान्तर में प्रवेश करने के लिए व्याकरण ज्ञान नितान्त आवश्यक है। क्योंकि बिना व्याकरण के तो अन्धा ही बना रहेगा, तो दूसरे शास्त्रों का अवलोकन कैसे कर सकेगा ? कहा भी है।

"विना व्याकरणेनान्धः बधिरः कोशविवर्जितः।
छन्दः शास्त्रं विना पङ्गु, मूकस्तर्कविवर्जितः।।"

अतः दूसरे शास्त्रों के भी अवलोकनार्थ व्याकरण ज्ञानरूपी चक्षु का होना परमावश्यक है। इस प्रकार व्याकरण ज्ञान का प्रयोजन तो स्वतः सिद्ध है।

संस्कृत व्याकरण के प्रमुख आचार्य

व्याकरण–शास्त्र में ऐन्द्रतन्त्र सबसे प्राचीन है। सर्वप्रथम देवगुरु वृहस्पति ने इन्द्र को व्याकरण पढ़ाया था जैसा कि महाभाष्य में लिखा है–

'बृहस्पतिरिन्द्राय...........शब्दनारायणं प्रोवाच।'

वोपदेव ने भी आठ वैयाकरणों में सर्वप्रथम इन्द्र का नाम लिया है–

"इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नाऽऽपिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमरजैनेन्द्राः जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः।।"

श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने इन्द्र का काल ८५०० वि० पूर्व माना है परन्तु ऐन्द्र व्याकरण उपलब्ध नहीं है।

इन्द्र से लेकर पाणिनि तक अनेक आचार्य हुए जिनमें प्रमुख हैं–आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, भरद्वाज, शाकटायन और शाकल्य आदि। परन्तु इनमें से किसी भी आचार्य का व्याकरण पूर्णरूपेण प्राप्त नहीं होता है। सबसे पहला पूर्ण व्याकरण महर्षि पाणिनि का ही मिलता है।

पाणिनि

आचार्य पाणिनि के जीवनवृत्त के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी कहना कठिन है। महाभाष्य से ज्ञात होता है कि इनकी माता का नाम 'दाक्षी' था। गणतन्त्र–महोदधि के आधार पर पाणिनि का जन्म स्थान 'शालातुर' नामक ग्राम है–जो इस समय पाकिस्तान में 'लाहौर' के नाम से प्रसिद्ध है। (शालातुरो नाम ग्रामः सोऽभिजनोऽस्यातीति शालातुरीयः, तत्र भवान् पाणिनिः) इनके गुरु का नाम उपवर्षाचार्य था। पाणिनि ने घोर तपस्या से आशुतोष भगवान शंकर को प्रसन्न कर उनके उपदेश से अष्टाध्यायी, सूत्रपाठ, धातुपाठ, गणपाठ, लिङ्गानुशासन आदि की रचना की। युधिष्ठिर मीमांसक ने पाणिनि का काल लगभग २८०० वि० पू० माना है। इनका अष्टाध्यायी नामक अनुपम ग्रन्थ-रत्न है। विश्व की किसी भी भाषा में इनके समान कोई दूसरा व्याकरण नहीं बना है। इसीलिए पाणिनीय व्याकरण का स्थान उच्चतम एवं महनीय है।

आचार्य पाणिनि विरचित व्याकरण में लगभग ४००० सूत्र है। जिसका प्रथम सूत्र वृद्धिरादैच् और अन्तिम सूत्र अ अ है। ज्यादा से ज्यादा विषय को संक्षेप में कहने के लिए ही सूत्र होते हैं। यथा–

"अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः।।"

अल्प अक्षरों से अधिक अर्थ बताने की क्षमता, सन्देह रहित विषय की प्रस्तुति, सारतम प्रक्रिया सारणी, आवश्यक सभी स्थानों पर प्रवृत्त होने की क्षमता, दोषों का अभाव होना और अनिन्दनीय रहना ये सूत्रों के छः लक्षण होते हैं। ऐसे सूत्रों को पाणिनि ने छः कोटियों में रखा है।

"संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम्।।"

संज्ञा, परिभाषा, विधिसूत्र, नियममूत्र, अतिदेशसूत्र और अधिकार सूत्र। सबसे अधिक विधिसूत्र, उनसे कम संज्ञा सूत्र है। इसी प्रकार अधिकार सूत्र, परिभाषा सूत्र, नियमसूत्र, और अतिदेशसूत्र है।

वार्तिककार कात्यायन

पाणिनीय व्याकरण को और भी परिष्कृत एवं सुबोध बनाने वाले कात्यायन मुनि है। कात्यायन यह शब्द गोत्रप्रत्ययान्त है। श्री युधिष्ठिर मीमांसक के मत में कात्यायन का तात्पर्य शुक्लयजुर्वेदीय, अङ्गिरस शाखा के प्रवर्तक कात्यायन पुत्र एवं याज्ञवल्क्य के पौत्र वररुचि ही कात्यायन है, जो वि० पूर्व २७०० शती के थे, परन्तु अन्य विद्वान इनको ४००-३०० ई० पू० के मध्य मानते हैं।

कात्यायन और पाणिनि दोनों समकालीन थे। कात्यायन मुनि व्याकरण शास्त्र में वार्तिककार के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने पाणिनी की अष्टाध्यायी के १५०० सूत्रों पर ४००० वार्तिकों की रचना करके उनकी कमियों को दूर करने का सफल प्रयास किया।

"उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।
तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुः वार्तिकज्ञाः विचक्षणाः।।"

सूत्रों में उक्त, अनुक्त, दुरुक्त के कारण जहाँ पर विषय का पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं होता या अन्यार्थ होता है, ऐसी स्थिति के समाधानार्थ पूरक वाक्य बनाये गये उन्हें विचक्षणगण वार्तिक कहते हैं। जैसे कि—ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम् आदि।

महाभाष्यकार पतञ्जलि

कात्यायन के पश्चात् पाणिनीय व्याकरण की यथार्थता को सरलतम भाषा और रोचक शैली में सूक्ष्म तत्त्वों का विश्लेशण करके उन्नत और सार्थक बनाने वाले महर्षि पतञ्जलि है। इनका ग्रन्थ महाभाष्य के नाम से विख्यात है। भाष्य नाम उन्हें दिया जाता है जो सूत्रों के अर्थों का वर्णन करे और अपने द्वारा उनकी व्याख्या करे। यथा—

"सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र पदं सूत्रानुसारिभिः।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः।।"

विद्वानों के मतानुसार इनका समय २०० ई० पू० तथा पहली ई० शती के मध्य माना जाता है। इनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में भी विद्वद्गण एकमत नहीं है। कुछ विद्वान्

इन्हें कश्मीर का मानते हैं तो कुछ विद्वान् गोनर्द का और अन्य इन्हें पाटलिपुत्र का भी मानते हैं परन्तु ये प्रमाण पुष्ट नहीं है।

पतञ्जलि न केवल शब्द शास्त्र के विद्वान् थे अपितु योगदर्शन एवं चिकित्साशास्त्र के भी रचयिता थे। यह प्रसिद्धि है कि महाभाष्यकार पतञ्जलि ही योगदर्शनसूत्र एवं चरक संहिता के रचयिता है। कहा भी गया है–

"योगेन चिन्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि।।"

अर्थात् योगसूत्रों से चित्त के मल का, व्याकरण के सूत्रों से वाणी की अशुद्धि का और चरकसंहिता से शरीर के रोगों का निराकरण पतञ्जलि ने किया है।

पतञ्जलि के महाभाष्य के अनेक व्याख्याता हुए जिनमें भर्तृहरि, कैयट आदि प्रमुख है।

अष्टाध्यायी के व्याख्याकार

अष्टाध्यायी पर कुणि, व्याडि आदि कतिपय आचार्यों की टीकायें हैं, परन्तु 'त्रिमुनिव्याकरणम्' सिद्ध हो जाने के पश्चात् पं० जयादित्य ने 'काशिकावृत्ति' लिखी। ततश्च पं० रामचन्द्राचार्य ने 'प्रक्रिया कौमुदी' लिखी। इसके बाद वि० सं० १५५० से १६५० के मध्यवर्ती भट्टोजिदीक्षित ने अष्टाध्यायी, उणादिसूत्र, फिट्सूत्र, लिङ्गानुशासन, गणपाठ और धातुपाठ से सर्वाङ्गपूर्ण 'सिद्धान्तकौमुदी' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसकी सर्वाङ्ग पूर्णता को देखकर विद्वद्वृन्द मुक्तकण्ठ से कह उठा–

"कौमुदी यदि नायाति वृथा भाष्ये परिश्रमः।
कौमुदी यदि चायाति वृथा भाष्ये परिश्रमः।।"

वरदराजाचार्य

आचार्य वरदराज दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम श्री दुर्गातनय था और इनके गुरु का नाम श्री भट्टोजिदीक्षित था। इन्होंने अध्ययन के पश्चात् अपने गुरु की आज्ञा से 'सिद्धान्तकौमुदी' के पथ-प्रदर्शक 'लघुसिद्धान्तकौमदी' की रचना की। संस्कृत व्याकरणशास्त्र में प्रवेश करने के लिए यह सर्वोत्तम ग्रन्थ-रत्न है!

✤

अथ विभक्त्यर्थ प्रकरणम् (कारक प्रकरणम्)

प्रथमा विभक्तिः (कर्त्ता)

प्रथमाविभक्तिविधायक विधि सूत्रम्

१. प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा २/३/४६

वृत्ति—नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः। मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः।
प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये परिमाणमात्रे संख्यामात्रे
च प्रथमा स्यात्।

प्रातिपदिकार्थमात्रे—उच्चैः। नीचैः। कृष्णः। श्रीः। ज्ञानम्।
लिङ्गमात्रे—तटः। तटी। तटम्।
परिमाणमात्रे—द्रोणो व्रीहिः।
वचनं संख्या—एकः, द्वौ: बहवः।

अथ विभक्त्यर्थप्रकरणम् (कारक)—विभक्त्यर्थ प्रकरणम् में प्रथमा आदि विभक्तियों का अर्थ बतलाया जायेगा। कौन-सी विभक्ति का प्रयोग किस अर्थ में होता है, इसका निरूपण भी इसी प्रकरण में होगा। **विभक्त्यर्थ प्रकरणम्** को **कारक प्रकरणम्** भी कहते हैं। कारक शब्द का परिभाषिक अर्थ है 'करोति क्रियां निर्वर्तयतीति कारकं' अथवा 'क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्' अथवा साक्षात् क्रियाजनकं कारकम्। जो क्रिया का निमित्त बने अर्थात् जो क्रिया का निष्पादन करे, जो क्रिया के साथ अन्वय रखे अथवा जो क्रिया का जनक है, उसे कारक कहते हैं।

संस्कृत व्याकरण के अनुसार कारक केवल छः माने गये हैं—कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादन, अधिकरण; जैसा किया गया है—

कर्त्ता कर्म च करणं च सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणे इत्याहुः कारकाणि षट्।।

संस्कृत में सम्बन्ध और सम्बोधन को कारक नहीं माना गया है, क्योंकि षष्ठी को छेड़कर अन्य सभी कारकों का क्रिया के साथ साक्षात् अन्वय है किन्तु सम्बन्ध का सीधे अन्वय न होकर परम्परया अन्वय है। क्रियापद से प्रत्यक्षतः सम्बन्धित न होने के कारण सम्बन्ध को केवल विभक्तियों में रख गया है कारक में नहीं। विभक्ति भी दो प्रकार की होती है—१. कारक विभक्ति। २. उपपद विभक्ति। जो कारक के अर्थ में आने वाली विभक्ति होती है वे 'कारक विभक्ति' कहलाती है और जो कारक से भिन्न या किसी पद के योग में आने वाली विभक्ति 'उपपद विभक्ति' कही जाती है। प्रत्येक कारक का क्रिया

के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध अवश्य रहता है; यथा—'बालकः पठति' में बालकः कर्त्ता का पठति क्रिया के साथ साक्षात् सम्बन्ध है अतः प्रथमा विभक्ति से युक्त बालकः यह कारक हुआ।

इसी प्रकार 'बालकः पुस्तकं पठति' में पुस्तकं इस कर्म का पठति क्रिया के साथ में सीधे सम्बन्ध हो रहा है अतः क्रिया के साथ साक्षात् होने के कारण द्वितीयाविभक्ति युक्त पुस्तकम् यह कर्म कारक हुआ।

'बालकः मनसा पुस्तकं पठति' इस वाक्य में मनसा इस करण का पठति इस क्रिया के साथ साक्षात् सम्बन्ध होने के कारण तृतीयाविभक्तियुक्त मनसा यह करण-कारक हुआ।

'बालकः मनसा ज्ञानाय पुस्तकं पठति' इस वाक्य में ज्ञानाय इस सम्प्रदान का पठति क्रिया के साथ साक्षात् सम्बन्ध है अतः चतुर्थीविभक्तियुक्त 'ज्ञानाय' यह सम्प्रदान-कारक हुआ।

'बालकः मनसा ज्ञानाय आचार्यात् पुस्तकं पठति' इस वाक्य में आचार्यात् इस अपादन का पठति क्रिया का सीधा सम्बन्ध है अतः यहाँ पर पञ्चमीविभक्तियुक्त आचार्यात् यह अपादान कारक हुआ।

'बालकः विद्यालये आचार्यात् ज्ञानाय मनसा पुस्तकं पठति' इस वाक्य में विद्यालये अधिकरण का पठति क्रिया के साथ सीधा सम्बन्ध है सप्तमीविभक्तियुक्त विद्यालये यह अधिकरण कारक है।

बालकः मित्रस्य गृहं गच्छति एवं हे बालकः ! त्वं मित्रस्य गृहं गच्छसि इन दोनों वाक्यों में मित्रस्य षष्ठीविभक्तियुक्त शब्द का गच्छति क्रिया के साथ और हे बालकः सम्बोधनयुक्त शब्द का गच्छसि क्रिया के साथ साक्षात् सम्बन्ध नहीं है अतः षष्ठीविभक्तियुक्त और सम्बोधनयुक्त वाक्य कारक की कोटि में नहीं गिने जाते हैं।

विवक्षातः कारकाणि भवन्ति। वक्ता जिस प्रकार के भाव से किसी को प्रस्तुत करना चाहता है, यह उसकी इच्छा पर निर्भर करता है। वह अग्निः पचति या अग्निना पचति आदि किस रूप में प्रयोग करना चाहता है, उस रूप में प्रयोग कर सकता है।

अर्थ—प्रथमा विभक्ति। प्रतिपदिकेति—प्रातिपदिकार्थ मात्रा में, लिङ्ग मात्र की अधिकता में, परिमाणमात्र में और वचन में प्रथमा विभक्ति होती है।

नियतेति—प्रातिपदिक 'यस्मिन् प्रातिपादिके उच्चारिते यस्यार्थस्य नियमेनोपस्थितिः, सोऽत्र प्रातिपदिकार्थो विवक्षित इत्यर्थः' किसी शब्द के उच्चारण करने पर जिस अर्थ की नियत उपस्थिति होती है, उसे प्रातिपदिकार्थ कहते हैं। यद्यपि 'पञ्चकं प्रातिपदिकार्थः' इत्यादि प्राचीन सिद्धान्तों के अनुसार स्वार्थ (जाति) द्रव्य (व्यक्ति) लिङ्ग, संख्या और कारक, ये पाँच अर्थ प्रातिपदिक के होते हैं, तथापि यहाँ पर जाति और व्यक्ति ही लिए जाते हैं, क्योंकि इस सूत्र में लिङ्ग और वचन (संख्या) अर्थ को पृथक ग्रहण किया गया है यदि यहाँ पाँचों ही अर्थ अभीष्ट हों तो लिङ्गादि का पृथक ग्रहण करना व्यर्थ हो जाता है अतः यहाँ जाति और व्यक्ति दो को ही प्रातिपदिकार्थ रूप में लिया जाता है। इन्हीं की

प्रतीति प्रातिपदिक के उच्चारण होने पर नियम से होती है। लिङ्ग की प्रतीति नियमतः नहीं होती, लिङ्ग में तो कहीं पुल्लिङ्ग की तो कहीं स्त्रीलिङ्ग की प्रतीति होती है। इस प्रकार संख्या और कारक की प्रतीति भी नियमतः नहीं होती, कहीं एकत्व संख्या की प्रतीति होती है तो कहीं द्वित्व संख्या की, कहीं कर्त्ता कारक की तो कहीं कर्म कारक की प्रतीति होती है। इसलिए इन्हें यहाँ प्रातिपदिकार्थ नहीं कहा गया है।

मात्रशब्दस्येति—इस सूत्र में 'मात्र' शब्द अवधारणार्थक है। इसमें चार मानक निश्चित किये गये हैं—प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग परिमाण और वचन। इन चारों के साथ मात्रशब्द का सम्बन्ध है। 'प्रातिपदिकार्थश्च, लिङ्गं च, परिमाणं च, वचनं चेति प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनानि' इस प्रकार यहाँ द्वन्द्व समास है और इसके अन्त में 'मात्र' को जोड़ा जाता है अतः 'मात्र' का योग द्वन्द्व के अवयवभूत प्रत्येक पद प्रातिपदिकार्थ के साथ, लिङ्ग के साथ, परिमाण के साथ और वचन के साथ भी हो जाता है। इसका यह अर्थ होता है—

प्रातिपदिकार्थ में ही, प्रातिपदिकार्थ होते हुए लिङ्गमात्र की अधिकता होने पर प्रातिपदिकार्थ होते हुए परिमाणमात्र की अधिकता होने पर और प्रातिपदिकार्थ होते हुए संख्यामात्र होने पर भी प्रथमा विभक्ति होती है।

शब्दों में विभक्ति का आना आवश्यक है, क्योंकि विभक्ति के पश्चात् ही सुप्तिङन्तं पदम् से पदसंख्या होती है। पद होने पर ही वह व्यवहार योग्य हो जाता है। **'अपदं न प्रयुञ्जीत'** अर्थात् अपद का प्रयोग नहीं करना चाहिए; यथा—'श्री' इस शब्द में विना विभक्ति लगाए इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता। पद बनने के लिए तिङ् या सुप् आदि विभक्तियों का होना आवश्यक है। 'विभक्त्यर्थप्रकरणम्' में 'सुप्' आदि विभक्ति कहाँ-कहाँ पर और किस-किस प्रकार से की जाती है, यही अर्थ निश्चय करता है।

प्रातिपदिकार्थमात्रे—जिस शब्द का सीधा अर्थ उपस्थित हो उस सार्थक शब्द को प्रातिपदिकार्थ कहते हैं। प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा विभक्ति होती है। यथा—उच्चैः (ऊँचा) नीचैः (नीचा) कृष्णः (वासुदेव) श्रीः (लक्ष्मी) और ज्ञानम् (ज्ञान) ये प्रातिपदिकार्थ मात्र के उदाहरण हैं। यहाँ पर प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथभा से प्रथमा विभक्ति हुई।

उच्चैः और नीचैः। उच्चैस् और नीचैस् ये अलिङ्ग अव्यय शब्द हैं। इनमें प्रथमा विभक्ति आती है। उच्चैस् + सु में अव्ययादाप्सुपः से 'सुप्' का लोप होता है और उच्चैस् के सकार का रुत्वविसर्ग होकर पद हो जाता है और उच्चैः नीचैः आदि रूप होते हैं। विभक्ति लगने पर ही अव्यय शब्द सुबन्त पद कहलाते हैं, और पद होने से प्रयोग के योग्य हो जाते हैं। इसी प्रकार कृष्णः शब्द से 'पुल्लिङ्ग' की श्रीः शब्द से स्त्रीलिङ्ग की तथा ज्ञानम् शब्द से नपुंसकलिङ्ग की नियम से प्रतीति होती है।

लिङ्गमात्राधिक्ये—प्रातिपदिकार्थ के विना केवल लिङ्ग आदि की प्रतीति नहीं होती अतः लिङ्गमात्र का बोध कराने के लिए प्रथमा विभक्ति होती है। लिङ्गमात्र के

उदाहरण अनियत लिङ्ग शब्द हैं। यथा—तट:, तटी, तटम् ये शब्द 'किनारा' अर्थ के साथ-साथ क्रमशः पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग का भी बोध कराते हैं। इसका नियतलिङ्ग एक नहीं है। तट शब्द अनियतलिङ्ग होने के कारण उस तट शब्द से उसमें विद्यमान अनेक लिङ्गों में से एक नदी का तट अर्थ तो उपस्थित है किन्तु अनेक लिङ्ग पु०, स्त्री० नपुंस० अर्थ उपस्थित न होने से यहाँ 'प्रातिपदिकार्थ' से प्रथमा नहीं हो सकती है। अत: यहाँ पर प्रातिपदिकार्थ से लिङ्गमात्र अधिक होने पर प्रथमा विभक्ति होती है।

परिमाणमात्राधिक्ये—'द्रोणो व्रीहि:' यहाँ पर परिमाण मात्र अधिक होने पर द्रोण शब्द से प्रथमा विभक्ति हुई। द्रोण एक परिमाण (माप) का नाम है। जैसे—द्रोणो व्रीहि:—द्रोण रूप जो परिमाण है उससे मापा गया व्रीहि यह अर्थ होता है। द्रोण विशेष परिमाण है और प्रथमा विभक्ति का अर्थ सामान्य परिमाण है। इसलिए इन सामान्य विशेषों का 'द्रोण रूप परिमाण' "द्रोणरूपंयत् परिमाणं तदभिन्नं परिमाणम्" इस प्रकार अभेद अन्वय होता है। उनका व्रीहि के साथ 'द्रोण' रूप परिमाण से नापा हुआ 'व्रीहि' इस प्रकार परिच्छेध-परिच्छेद्यक भाव सम्बन्ध से अन्वय होता है।

यदि इस परिणाम अर्थ में प्रथमा का विधान न किया जाये तो 'द्रोणो व्रीहि:' में दोनों में पदार्थों का अन्वय नहीं हो सकेगा। तब 'नामार्थयोरभेदान्वय:' इस नियम से एक नामार्थ प्रातिपदिकार्थ का दूसरे नामार्थ के साथ में अभेदान्वय ही होता है, जो 'द्रोणो व्रीहि:' में सम्भव नहीं है। क्योंकि द्रोण मापक है और व्रीहि माप्य। द्रोण परिमाण और व्रीहि द्रव्य एक नहीं हो सकते। अत: अभेदान्वय को बाधकर परिच्छेद-परिच्छेद्यक भाव रूप सम्बन्ध से अन्वय करने के लिए परिमाण अर्थ में प्रथमा की जाती है। और 'द्रोण रूप परिमाण से मापा हुआ व्रीहि यह अर्थ हो जाता है।

वचनमात्रे—वचन संख्या को कहते हैं। केवल संख्या को प्रकट करने के लिए प्रथमा विभक्ति होती है; यथा—एक:, द्वौ, बहव:। यहाँ एकत्व, द्वित्व और बहुत्व आदि अर्थ शब्दों से ही प्रकट होते है। तात्पर्य यह है कि एक द्वि, बहुसंख्यावाचक शब्दों से संख्या उक्त है उक्तार्थानामप्रयोग: इस न्याय से उक्त अर्थों का पुन: प्रयोग नहीं होता है अत: प्रथमा विभक्ति नहीं होनी चाहिए थी किन्तु 'अपदं न प्रयुञ्जीत' न केवला प्रकृति: प्रयोक्तव्या न केवल: प्रत्यय:' इस नियम से अप्राप्त प्रथमा विभक्ति की प्राप्ति का विधान किया गया जिसके द्वारा 'संख्या' रूप प्रातिपदिकार्थ का अनुवाद होता है।

सम्बोधने प्रथमाविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

२. सम्बोधने च २/३/४७।।

वृन्ति—प्रथमा स्यात्। हे राम् !

अर्थ—सम्बोधन अर्थ में भी प्रातिपदिक से प्रथमा विभक्ति हो। वक्ता के द्वारा अपनी बात को सुनने के लिए श्रोता को अपनी ओर आकृष्ट करना सम्बोधन कहलाता है अर्थात् अच्छी तरह समझाना। हे राम ! हे कृष्ण ! आदि उदाहरणों में सम्बोधन अर्थ में प्रथमा विभक्ति होकर (राम + सु) सु का लोप हो जाता है।

द्वितीया विभक्तिः (कर्म)

कर्म संज्ञा विधायकं संज्ञा सूत्रम्

३. कर्तुरीप्सिततमं कर्म १/४/४९।।

वृत्ति—कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

अर्थ—कर्त्ता अपनी क्रिया के द्वारा जिसे सर्वाधिक प्राप्त करना चाहे, उस कारक की कर्म संज्ञा हो। अर्थात् कर्त्ता अपनी क्रिया के द्वारा जिसको अभीष्ट अर्थात् सबसे अधिक प्राप्त करने की इच्छा रखता है उसे कर्म कहते हैं; यथा—पुष्पा ओदनं पचति (पुष्पा चावल पका रही है)। इस वाक्य में 'पुष्पा' कर्त्ताकारक है, पाक-क्रिया के द्वारा "चावल" को विशेष रूप से प्राप्त करना चाह रही है, अतः अत्यन्त इष्ट होने के कारण 'चावल' की कर्म संज्ञा होती है। कर्म संज्ञा का फल 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति का विधान करना है।

परन्तु जो कर्त्ता को इष्टतम न होकर कर्म आदि को इष्ट होगा उसकी कर्म संज्ञा नहीं होगी; यथा—माषेषु अश्वं बध्नाति (उड़दों में घोड़े को बाँधता है)। यहाँ उड़द घोड़े को इष्ट है और वही उन्हें खाना चाहता है परन्तु घोड़ा कर्मकारक है अतः उड़द की कर्म संज्ञा नहीं होगी, क्योंकि उड़द कर्म-अश्व को अभीष्ट है न कि कर्त्ता को।

द्वितीया विभक्ति विधायकं विधिसूत्रम्

४. कर्मणि द्वितीया २/३/२।।

वृत्ति—अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात्। हरिं भजति।

अभिहिते तु कर्मादौ प्रथमा। हरिः सेव्यते। लक्ष्म्या सेवितः।

अर्थ—अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है।

अनुक्त कर्म उसको कहते हैं जिसके कर्मरूप अर्थ में कृत्, तिङ् आदि प्रत्यय न हुए हो। जिस अर्थ में प्रत्यय होता है, वह उक्त होता है। जैसे—'रामः पुस्तकं पठति' इस वाक्य में 'पठ्' धातु में 'तिङ्' प्रत्यय के द्वारा कर्ता अर्थ में हुआ। इसलिए यहाँ कर्ता उक्त हुआ। एक उक्त होता है, तो शेष स्वतः अनुक्त हो जाते हैं। इसलिए इस वाक्य में कर्मवाचक शब्द पुस्तक अनुक्त हो जाता है और अनुक्त कर्म में इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति का विधान होता है।

हरिं भजति—(हरि को भजता है) इस वाक्य में कर्त्ता (भक्त) का इप्सिततम् कर्म 'हरि' है। कर्म अनुक्त है इसलिए कर्तुरीप्सिततं कर्म से 'हरि' की कर्म संज्ञा होती है। भजति क्रिया कर्तृवाच्य की है यहाँ भज् धातु से लट्लकार (ति) कर्ता अर्थ में हुआ है, इसलिए कर्म अनुक्त हुआ उसे किसी प्रत्यय आदि से नहीं कहा गया है। अनुक्त कर्म होने से हरिम् में उक्त सूत्र से द्वितीया विभक्ति होती है।

प्रायः तिङ्, कृत्, तद्धित और समास से कर्म आदि कारक उक्त होते हैं।

हरिः सेव्यते—इस वाक्य में सेव् धातु से कर्म अर्थ में लकार होता है। कर्मवाच्य की क्रिया होने से कर्म उक्त हो जाता है। अतः हरिः में प्रथमा विभक्ति होती है।

लक्ष्म्या सेवितो हरिः—इस वाक्य में तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः से सेव धातु से क्त प्रत्यय हुआ। क्त प्रत्यय कर्म अर्थ में होने से कर्म उक्त हो गया। अतः कर्म के उक्त होने से हरिः में द्वितीया विभक्ति न होकर 'प्रातिपदिकार्थमात्र' से प्रथमा विभक्ति होती है।

कर्मसंज्ञा विधायकं संज्ञा सूत्रम्

५. तथायुक्तं चानीप्सितम् १/४/५०।।

वृत्ति—ईप्सिततमवत्क्रियया युक्तमनीप्सिततरमपि कारकं कर्म संज्ञं स्यात्। ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति। ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते।

अर्थ—ईप्सिततम् (कर्ता जिसे सबसे अधिक चाहता है) कर्म से युक्त अनीप्सित (जिसको नहीं चाहता है) भी कर्म संज्ञक हो जाता है। अतः उसमें द्वितीया विभक्ति होती है।

व्याख्या—कर्त्ता के अनीप्सित होते हुए भी जो पदार्थ ईप्सिततम् की तरह क्रिया से युक्त होते हैं, उनकी भी कर्म संज्ञा होती है। ईप्सिततम् कर्म उसे कहते हैं जिसे कर्ता प्राप्त करने की अत्यधिक इच्छा रखता है। अनीप्सित कर्म उसे कहते हैं जिसे कर्त्ता नहीं चाहता है, परन्तु यदि अनीप्सित पदार्थ पर क्रिया का फल पड़ता है तो उसकी कर्म संज्ञा होती है और कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है; यथा—ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते (चावल को खाता हुआ विष को खाता है) इस वाक्य में 'विष' अनीप्सित है, परन्तु ओदन (जो कि ईप्सिततम है) की ही तरह क्रिया से युक्त है। अतः 'विष' शब्द की भी कर्म संज्ञा होगी। इसी प्रकार 'ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति' (गाँव को जाता हुआ तिनके को छूता है) इस वाक्य में 'तृण' उपेक्ष्य अनीप्सित है और 'स्पृश्' क्रिया से ईप्सिततम के समान जुड़ा हुआ है अतः 'ग्राम' के समान 'तृण' की भी उक्त सूत्र से कर्म संज्ञा होकर कर्मणि द्वितीया से द्वितीया विभक्ति होकर तृणम् बन जाता है।

ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति—(गाँव को जाता हुआ तिनके को छूता है) यहाँ पर मुख्य क्रिया 'जाना' है और अमुख्य क्रिया 'छूना' है और ईप्सिततम् कर्म 'ग्राम' है, अतः उसकी पूर्व सूत्र से ही कर्म संज्ञा हो जाती है किन्तु गाँव जाते हुए तिनके को छूना तो इप्सित नहीं है। इस समस्या के समाधानार्थ 'तथायुक्तं चानीप्सितम' सूत्र से अनीप्सित कारक तृण की भी कर्म संज्ञा होती है। क्योंकि कर्त्ता के अनीप्सित होते हुए भी जो पदार्थ इप्सिततम् की तरह क्रिया युक्त होते हैं उनकी भी कर्म संज्ञा होती है। इसीलिए अनीप्सित कर्म तृण की कर्म संज्ञा होकर कर्मणि द्वितीया से द्वितीया विभक्ति होकर तृणम् बनता है।

कर्मसंज्ञा विधायकं संज्ञा सूत्रम्

६. अकथितं च १/४/५१।।

वृत्ति—अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

अर्थ—अपादानादि विशेष रूपों से अविवक्षित कारक की कर्मसंज्ञा होती है।

व्याख्या—अकथित का तात्पर्य है 'न कहना' अथवा कहने की इच्छा न करना। जहाँ पर करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण आदि का अर्थ प्रकट होता है, परन्तु वक्ता उनका प्रयोग न कर कर्म का प्रयोग करता है तो उन कारकों को अकथित कहा जाता है। यह कर्म गौण या अप्रधान कहलाता है और कर्तुरीप्सिततमं कर्म से जो कर्म होता है वह प्रधान कर्म कहा जाता है। यह अविवक्षित कर्म का विधान निम्नलिखित कारिका में बतलायी गयी धातुओं तथा उनके ही समान अर्थ वाली धातुओं के लिए है—

('दुह' आदि षोऽश धातु-परिगणनम्)

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम्। कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्।।

दुह् इति—दुह् (दुहना) याच् (माँगना) पच् (पकाना) दण्ड् (दण्ड देना) रुध् (रोकना) पृच्छ् (पूँछना) चि (चुनना) ब्रू (बोलना) शास् (शासन करना) जि (जीतना) मथ् (मथना) मुष् (चुराना) नी (ले जाना) हृ (हरण करना) कृष् (जोतना, खीचना) वह् (ढ़ोना या ले जाना) आदि।

वस्तुतः यह नियम द्विकर्मक धातुओं के योग में प्रयुक्त होता है अर्थात् द्विकर्मक धातुओं के योग में अपादानादि विभक्तियों का प्रयोग होने पर भी द्वितीया विभक्ति का प्रयोग करते है। जैसे—

१. **गां दोग्धि पयः**—(गाय से दूध दुहता है) इस वाक्य में पयः प्रधान कर्म है और गाम् अपादान की विवक्षा न होने से गौण कर्म है अतः यहाँ पर 'गाय' की कर्म संज्ञा होकर 'गाम्' शब्द होता है।

२. **बलिं याचते वसुधाम्**—(बलि से पृथ्वी माँगता है) यहाँ पर बलि अपादान है किन्तु अपादान की अविवक्षा होने पर 'बलि', गौण कर्म है और 'वसुधा' प्रधान कर्म है अतः 'बलि' की कर्म संज्ञा होकर बलि में द्वितीया विभक्ति हुई।

३. **तण्डुलान् ओदनं पचति**—(चावलों से भात पकाता है) यहाँ पर तण्डुल में करण है किन्तु वक्ता से अविवक्षित होने के कारण तण्डुल की कर्म संज्ञा होती है, क्योंकि प्रधान कर्म ओदन है और गौण कर्म तण्डुल है। अतः 'तण्डुल' में द्वितीया विभक्ति होती है।

४. **गर्गान् शतं दण्डयति**—(गर्गों से सौ रूपये जुर्माना लेता है) यहाँ पर 'गर्ग' में अपादन होने से पञ्चमी होनी चाहिए थी किन्तु वक्ता की अविवक्षा से अकथित मानकर 'कर्म संज्ञा' होती है और गर्ग में द्वितीया विभक्ति होती है। शतम् प्रधान कर्म है और गर्गान् गौण कर्म है।

५. व्रजम् अवरुणद्धिगाम्–(व्रज में गाय को रोकता है) यहाँ पर 'व्रज' में अधिकरण होने से सप्तमी विभक्ति होनी चाहिए किन्तु वक्ता से अधिकरण की अविवक्षा होने पर कर्मसंज्ञा होती है और व्रज में द्वितीया विभक्ति होती है। गाम् प्रधान कर्म है और व्रजम् गौण कर्म है।

६. माणवकं पन्थानं पृच्छति–(बालक से मार्ग पूँछता है) यहाँ पर 'माणवक' में अपादान है किन्तु वक्ता से अपादान की अविवक्षा होने से माणवक की कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति होती है। पन्थानम् प्रधान कर्म है और माणवकम् गौण कर्म है।

७. वृक्षम् अवचिनोति फलानि (वृक्ष से फलों को चुनता है) यहाँ पर वृक्ष अपादान है किन्तु वक्ता से अपादान की अविवक्षा होने से वृक्ष की कर्मसंज्ञा होती है और वृक्ष में द्वितीया विभक्ति होती है फलानि प्रधान कर्म है और वृक्ष गौण कर्म है।

८.-९. माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा (बालक के लिए धर्म कहता है अथवा उपदेश करता है) यहाँ माणवक में सम्प्रदान होने के कारण चतुर्थी विभक्ति होनी थी किन्तु वक्ता से सम्प्रदान अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर कर्म संज्ञा हुई और माणवकम् में द्वितीया विभक्ति हुई। 'धर्मम्' प्रधान कर्म है।

१०. शतं जयति देवदत्तम् (देवदत्त से सौ रुपये जीतता है) यहाँ पर 'देवदत्त' में अपादान होने के कारण पञ्चमी विभक्ति होनी थी किन्तु अपादान की अविवक्षा होने के कारण अकथित मानकर देवदत्त की कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई। शतम् प्रधान कर्म है।

११. सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति (समुद्र को अमृत के लिए मथता है) यहाँ पर क्षीरनिधि में अपादान या अधिकरण होने के कारण पञ्चमी या सप्तमी विभक्ति होनी थी किन्तु वक्ता की अविवक्षा होने से अकथित मानकर कर्म संज्ञा हुई और 'क्षीरनिधिम्' में द्वितीया विभक्ति हुई यहाँ पर 'क्षीरनिधिम्' प्रधान कर्म है।

१२. देवदत्तं शतं मुष्णाति–(देवदत्त से सौ रुपये चुराता है)–यहाँ पर देवदत्त में अपादान होने के कारण पञ्चमी विभक्ति होनी थी किन्तु वक्ता से अपादान की अविवक्षा होने से अकथित मानकर कर्म संज्ञा हुई और देवदत्त में द्वितीया विभक्ति हुई। शतम् प्रधान कर्म है।

१३.-१४.-१५.-१६. ग्रामम् अजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा (गाँव में बकरी ले जाता है, खींचता है, पहुँचाता है) यहाँ पर ग्राम में अधिकरण होने के कारण सप्तमी विभक्ति होनी थी किन्तु वक्ता से अधिकरण की अविवक्षा होने से अकथित मानकर अकथितं च से कर्म हुई और ग्राम में द्वितीया विभक्ति हुई। अजाम् प्रधान कर्म है।

अर्थ निबन्धनेयं संज्ञा।

बलिं भिक्षते वसुधाम्। माणवकं धर्मं भाषते अभिधत्ते वक्तीत्यादि।

अर्थ–'अकथितं च' सूत्र से जिन धातुओं के योग में कर्म संज्ञा होती है, उन धातुओं का जो अर्थ हो, यदि वही अर्थ किसी अन्य धातु का भी हो तो उस धातु से योग

में भी अकथित कर्म मान लिया जाता है। यथा—याच् धातु का अर्थ है माँगना और भिक्ष् धातु का अर्थ भी है माँगना। इसलिए समानार्थक भिक्ष् धातु के योग में कर्मसंज्ञा होकर बलिं भिक्षते वसुधाम् बनता है। इसी प्रकार से समानार्थक भाष्, वच्, अभि + धा के योग में भी अकथित मानकर कर्म संज्ञा करके माणवकं धर्मं भाषते, वक्ति, अभिधन्ते (लड़के से धर्म कहता है) यहाँ 'ब्रू' धातु के अर्थ वाली धातुओं के योग में 'माणवक' इस सम्प्रदान की अविवक्षा के कारण कर्म संज्ञा होती है।

(वा०) अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्म संज्ञक इति वाच्यम्। कुरुन् स्वपिति मासमास्ते। गो दोहमास्ते। क्रोश मास्ते।

अर्थ—अकर्मक धातुओं के योग में, देश, काल, भाव तथा गन्तव्य मार्ग की कर्म संज्ञा होती है।

कुरुन् स्वपिति—'कुरु देश में सोता है।' इस वाक्य में स्वपिति इस अकर्मक क्रिया के योग के देशवाचक कुरु शब्द की कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई।

मासमास्ते—'महीने भर रहता है'। इस वाक्य में आस्ते इस अकर्मक क्रिया के योग में काल वाचक मास की कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति होती है।

गोदोहमास्ते—'गोदोहन बेला तक रहता है' (अर्थात् जब तक गायें दुही जाएँ तब तक ठहरता है) यहाँ पर भावाचक गोदोह की अकर्मक क्रिया से योग होने पर कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति होती है।

क्रोशमास्ते—'कोस भर में रहता है'। यहाँ मार्ग वाचक क्रोश शब्द की कर्म संज्ञा होकर क्रोश में द्वितीया विभक्ति हुई।

७. गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ। १/४/५२।।

वृत्ति—गत्याद्यर्थानां शब्दकर्मणां कर्मकाणां चाणौ यः कर्त्ता स णौ कर्म स्यात्। शत्रूनगमयत्स्वर्गम्, वेदार्थं स्वानवेदयत्। आशयच्चामृतं देवान्। वेदमध्यापयद्विधिम्। आसयत्सलिले पृथवीम्, यः स मे श्रीहरिर्गतिः गतीत्यादि किम्—पाचयत्योदनं देवदत्तेन। अण्यन्तानां किम् ? गमयति देवदत्तो यज्ञदत्तं तमपरः प्रयुङ्क्ते गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णु मित्रः।

अर्थ—गति अर्थ वाले धातु, ज्ञान अर्थ वाले धातु, भोजन अर्थ वाले धातु, शब्द सम्बन्धी कर्म वाले धातु और अकर्मक धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञा होती है।

व्याख्या—गति अर्थक (गम् या इण् आदि) बुद्ध्यर्थक (ज्ञा, विद्, बुध् आदि) प्रत्यवसानार्थक (भक्षणार्थक—भक्ष्, भुज् आदि) शब्द कर्मक और अकर्मक धातुएँ (स्था, आस्, शीङ् आदि) धातुओं का अण्यन्तावस्था में (जब इन धातुओं से प्रेरणार्थक

णिच् प्रत्यय न किया गया हो) जो कर्ता हो, वह ण्यन्तावस्था (जब इन धातुओं से णिच् प्रत्यय करके इन्हें प्रेरणार्थक बना लिया गया हो) कर्मसंज्ञक हो जाता है और फिर उससे द्वितीया विभक्ति होती है।

सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि ण्यन्त कर्त्ता और अण्यन्त कर्त्ता किसे कहते हैं। किसी भी धातु में णिच् प्रत्यय लगाने से धातु ण्यन्त हो जाती है और जब णिच् प्रत्यय नहीं होता है तो अण्यन्त कहलाती है। णिच् प्रत्ययान्त होने से पठति से पाठयति, चलति से चालयति रूप बनते हैं। यथा—देवदत्तः पठति (देवदत्त पढ़ता है) में पठ् धातु अण्यन्त है और अण्यन्त अवस्था का कर्त्ता देवदत्तः है। जब पठ् धातु को णिच् कर दिया जाता है तो ण्यन्त होकर पाठयति बनता है। पाठयति का अर्थ होता है—पढ़ाता है। पढ़ने वाला देवदत्त है तो पढ़ाने वाला कोई अन्य होगा।

यथा—'आचार्यः देवदत्तं पाठयति' इस वाक्य में पढ़ाने का कर्त्ता आचार्य है कर्म देवदत्त है। इस प्रकार से 'अण्यन्त' अवस्था का कर्त्ता 'ण्यन्त' अवस्था में कर्म हो जाता है। 'देवदत्तः पठति' (देवदत्त पढ़ता है।) 'आचार्यः देवदत्तं पाठयति' (आचार्य देवदत्त को पढ़ाते हैं) इन दोनों वाक्यों में प्रथम वाक्य अण्यन्त अवस्था का है और द्वितीय वाक्य ण्यन्त अवस्था का है।

सभी धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्त्ता ण्यन्त कर्मसंज्ञक नहीं होते, कुछ ही धातुओं में यह कार्य होता है। जैसे—गति अर्थ वाली धातु, ज्ञान अर्थ वाली धातु, भोजन अर्थ वाली धातु, शब्द सम्बन्धी अर्थ वाली धातु और अकर्मक धातु[1] हो, तो इन धातुओं का कर्त्ता यदि अण्यन्त अवस्था का है तो ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञक हो जाता है।

साधारण या अण्यन्तावस्था	प्रेरणार्थक या ण्यन्तावस्था
(१) शत्रवः स्वर्गमगच्छन्	(१) हरिः **शत्रून्** स्वर्गम् अगमयत्
(२) स्वे वेदानार्थमविदुः	(२) हरिः **स्वान्** वेदार्थमवेदयत्
(३) देवा अमृतमाश्नन्	(३) हरिः **देवान्** अमृतमाशयत्
(४) विधिर्वेदमध्यैत	(४) हरिः **वेदं** विधिमध्यापयत्
(५) पृथ्वी सलिले आस्ते	(५) हरिः **पृथ्वीं** सलिले आसयत्

उक्त वाक्यों में रेखांकित पद साधारण अवस्था में कर्त्ता थे, परन्तु ण्यन्त अवस्था में वे सभी कर्म हो गये। अतः उनमें द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

८. हृक्रोरन्यतरस्याम् १/४/५३।।

वृत्ति—हृक्रोरणौ यः कर्त्ता स णौ वा कर्म स्यात्। हारयति कारयति वा भृत्यं भृत्येन वा कटम्।

---

१. **अकर्मक धातुएँ प्रायः निम्न हैं—**

"लज्जा सत्ता स्थिति जागरणं, बुद्धि क्षय भय जीवित मरणम्।

शयन क्रीडा रुचि दीप्त्यर्थ, धातु गणन्तमकर्मकमाहुः।।"

अर्थ एवं व्याख्या—हृ (ले जाना) कृ (करना) धातुओं का साधारण अवस्था का कर्त्ता ण्यन्तावस्था में विकल्प से कर्मसंज्ञक होता है; यथा—'कारयति हारयति वा भृत्यं भृत्येन वा कटम्' सेवक से चटाई मँगवाता है। इस वाक्य में 'भृत्य' की विकल्प से कर्मसंज्ञा होती है। कर्मसंज्ञा के अभाव में तृतीया विभक्ति भी होती है। अतः भृत्यं, भृत्येन दोनों ही रूप बनते हैं।

९. अधिशीङ्स्थासां कर्म १/४/४६।।

वृत्ति—अधिपूर्वाणामेषामाधारः कर्मस्यात्। अधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः।

अर्थ—अधि उपसर्गपूर्वक शीङ् (शी) = सोना, स्था (ठहरना) और आस् = बैठना, इन धातुओं का आधार कर्मसंज्ञक होता है।

व्याख्या—साधारण नियमानुसार आधार की अधिकरण संज्ञा होती है और अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है, परन्तु यदि 'अधि' उपसर्ग पूर्व में हो और शीङ्, स्था और आस् धातुओं का योग हो तो आधार की भी कर्म संज्ञा होती है और उसमें द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है।

यथा—हरिः वैकुण्ठम् अधिशेते, अधितिष्ठति अध्यास्ते वा।

(हरि वैकुण्ठ में सोते हैं, ठहरते हैं अथवा बैठते हैं) इसी प्रकार भूपतिः सिंहासनम् अध्यास्ते (राजा हिंसासन पर बैठता है)

इन वाक्यों में वैकुण्ठ और सिंहासन आधार है, परन्तु 'अधि' उपसर्ग पूर्वक 'शी' 'स्था' और 'आस्' धातुओं का योग होने से आधार की कर्मसंज्ञा हो जाती है और 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति होती है। यदि उपर्युक्त धातुओं में अधि उपसर्ग का प्रयोग नहीं होता है तो आधार की अधिकरण संज्ञा होकर उसमें सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। यथा—सिंहासने आस्ते (सिंहासन पर बैठता है) आदि।

१०. अभिनिविशश्च १/४/४७।।

वृत्ति—अभिनीत्येतत् संघातपूर्वस्य विशतेराधारः कर्म स्यात्। अभिनिविशते सन्मार्गम्। 'परिक्रयणे सम्प्रदानम्' इति सूत्रादिह मण्डूकप्लुत्याऽन्यतरस्यां ग्रहणमनुवर्त्य व्यवस्थितविभाषाश्रयणात् क्वचिन्न। पापेऽभिनिवेशः।

अर्थ—'अभि' और 'नि' उपसर्ग जब एक साथ 'विश्' धातु के पहले आते हैं तो विश् धातु के आधार की कर्म संज्ञा हो जाती है।

यथा—'अभिनिविशते सन्मार्गम' (सन्मार्ग (अच्छेमार्ग) का अनुसरण करता है।)

यहाँ पर 'अभि' 'नि' उपसर्ग पूर्वक विश् धातु का प्रयोग हुआ है। अतः आधार 'सन्मार्ग' की कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति होती है। यदि विश् धातु से पहले 'अभि' और 'नि' ये दोनों उपसर्ग न आकर केवल एक ही उपसर्ग आये तो द्वितीया विभक्ति का प्रयोग नहीं होगा, फिर उसमें सप्तमी विभक्ति होगी; यथा—"निविशते सन्मार्गे"।

उक्त सूत्र में आगे कहे जाने वाले "परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्" इस सूत्र में मण्डूकप्लुति न्याय से (अर्थात् मण्डूक के समान बीच के सूत्रों को छोड़कर उछलते हुए) अन्यतरस्याम् (विकल्प) की अनुवृत्ति (अपकर्ष या खींच लिया जाना) होती है और उस 'अन्यतरस्याम्' को व्यवस्थित विभाषा (कहीं होना कहीं न होना) मान लिया गया है। जैसे—"पापेऽभिनिवेशः" (पाप में प्रवृत्ति) इस उदाहरण में 'अभि' और 'नि' उपसर्ग एक साथ है और उनके परे 'विश्' धातु का योग भी है, किन्तु उक्त सूत्र से कर्म संज्ञा न होकर, आधार संज्ञा होती है और 'पाप' में सप्तमी विभक्ति होती है।

११. उपान्वध्याङ्वसः १/४/४८।।

वृत्ति—उपादि पूर्वस्य वसतेराधारः कर्मस्यात्। उपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति वा वैकुण्ठं हरिः।

अर्थ—उप, अनु, अधि और आ उपसर्ग पूर्वक **'वस्'** धातु के योग में आधार की कर्मसंज्ञा होती है।

व्याख्या—यदि 'वस्' धातु के पूर्व 'उप' 'अनु', 'अधि' और 'आ' में से कोई उपसर्ग लगा हो तो 'वस्' धातु के आधार की कर्मसंज्ञा होती है।

यथा—हरिः वैकुण्ठम् उपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति वा (हरि वैकुण्ठ में निवास करते हैं।)

यहाँ उपर्युक्त नियम से वैकुण्ठ की कर्मसंज्ञा होगी। जहाँ केवल वस् धातु का प्रयोग होगा इन उपसर्गों में से कोई उपसर्ग नहीं होगा तो वहाँ पर द्वितीया न होकर आधार में सप्तमी विभक्ति होती है।

यथा—"हरिः वैकुण्ठे वसति" (हरि वैकुण्ठ में निवास करते हैं।)

(वा) अभुक्त्यर्थस्य न।

वृत्ति—वने उपवसति।

अर्थ एवं व्याख्या—जब 'उप' उपसर्ग पूर्वक वस् धातु का अर्थ उपवास (न खाना) अर्थ में होता है तो उसके आधार की कर्मसंज्ञा नहीं होती है।

यथा—"वने उपवसति" (वन में उपवास करता है) यहाँ पर 'उपवास' का अर्थ है 'व्रत करना'। अतः आधार 'वन' की कर्मसंज्ञा न होकर अधिकरण ही रहता है और वन में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है।

अकर्मक क्रिया—क्रियायें निम्नलिखित चार प्रकार से अकर्मक होती हैं—

१. जब धातु का अन्य अर्थ में प्रयोग होता है तो क्रिया अकर्मक हो जाती है; यथा—सः भारं वाहति (वह भार को ढोता है) यहाँ वहति सकर्मक है परन्तु नदी वहति (नदी बहती है) इस उदाहरण में अर्थ बदल जाने से वहति अकर्मक हो जाता है।

२. धातु के अर्थ में कर्म के समाविष्ट हो जाने से अकर्मक क्रिया हो जाती है; यथा—सः जीवति (वह प्राण धारण करता है) यहाँ प्राणरूप कर्म धातु के अर्थ में समाविष्ट है, अतः वह अकर्मक है।

३. कर्म के प्रसिद्ध होने से क्रिया अकर्मक होती है। यथा—मेघो वर्षति (बादल बरसता है) यहाँ बरसने का कर्म जल प्रसिद्ध है, अतः उसके उल्लेख न होने से 'वर्षति' क्रिया अकर्मक है।

४. कर्म को न कहने की इच्छा से भी क्रिया अकर्मक हो जाती है; यथा—'हितान्न यः संश्रृणुते स किं प्रभुः' यहाँ हित कर्म है परन्तु वक्ता को उसे कर्म बतलाना अभीष्ट नहीं है, अतः 'संश्रृणुते' क्रिया अकर्मक है। क्योंकि इसका कर्म विवक्षित नहीं है।

कहने का तात्पर्य यह है कि अकर्मक धातु भी जब उपसर्ग आदि में जुड़ने से सकर्मक हो जाती है तब उसके कर्म में भी द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—'स्वामिनश्चित्तमेवाहमनुवर्ते' (मैं स्वामी के चित्त का ही अनुवर्तन करता हूँ) इस प्रयोग में यद्यपि 'वृत' अकर्मक है परन्तु 'अनु' उपसर्ग पूर्वक होने से वह सकर्मक हो जाता है। अतः उसके कर्म 'चित्तम्' द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी है; यथा—'सः सिंहासनमारोहति' (वह सिंहासन पर चढ़ता है) यहाँ 'आ + रूह्' धातु सकर्मक होकर कर्म 'आसन' में द्वितीया विभक्ति हुई।

"खगाः दिवमुत्पतन्ति" (पक्षी आकाश में उड़ते हैं।) यहाँ 'उत्' उपसर्ग पूर्वक 'पत्' धातु सकर्मक हुई।

"वाचमर्थोऽनुधावति" (अर्थ वाणी का अनुसरण करता है) यहाँ अनु + धाव् धातु सकर्मक है)

(वा) उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते।।

वृत्ति—उभयतः कृष्णं गोपाः। सर्वतः कृष्णम्। धिक् कृष्णाभक्तम्।
उपर्युपरि लोकं हरिः। अध्यधि लोकम्। अधोऽधोलोकम्।।

अर्थ एवं व्याख्या—तसिल् प्रत्ययान्त उभ एवं सर्व शब्द उभयतः, सर्वतः के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। धिक्, उपर्युपरि, अध्यधि और अधोऽधः इन शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। इनके क्रमशः उदाहरण निम्नवत् हैं—

उभयतः कृष्णः गोपाः (कृष्ण के दोनों ओर ग्वाले हैं) यहाँ तसिल् प्रत्ययान्त उभयतः के योग में कृष्णम् में द्वितीया है।

सर्वतः कृष्णः गोपाः (कृष्ण के सभी ओर ग्वाले हैं) यहाँ 'तसिल्' प्रत्ययान्त सर्वतः के योग में कृष्णम् में द्वितीया विभक्ति हुई।

धिक् कृष्णाभक्तिम् (कृष्ण के अभक्त को धिक्कार है) यहाँ पर धिक् योग में अभक्तम् में द्वितीया विभक्ति हुई। 'धिक्' के योग में कभी-कभी प्रथमा और सम्बोधन भी होते हैं; यथा—धिगियं दरिद्रता। धिङ् मूर्ख। यदि त्वं नाधीषे।

उपर्युपरि लोकं हरिः (हरि लोक के ठीक ऊपर है) यहाँ आम्रेडित (द्विरुक्ति, अर्थात् किसी शब्द का दो बार कथन करना) उपर्युपरि के योग में 'लोकम्' में द्वितीया विभक्ति हुई।

अध्यधि लोकम् (संसार के समीप में) इसी प्रकार अधोऽधो लोकं पाताल: (पाताल लोक के ठीक नीचे है) यहाँ पर अध्यधि और अधोऽधो का योग होने से लोकम् में द्वितीया विभक्ति हुई।

विशेष—उपर्युक्त उपरि, अधि और अध: शब्द जब सामीप्य के अर्थ में द्विरुक्त होते हैं तो उनके योग में द्वितीया होती है। यदि उनका सामीप्य अर्थ न हो तो षष्ठी ही होती है; यथा—उपर्युपरि **सर्वेषामादित्य** इव तेजसा। इस वाक्य में '**सर्वेषाम्**' में षष्ठी विभक्ति है।

इसके अतिरिक्त स्थानों पर भी द्वितीया विभक्ति होती है; यथा—"न त्वामृते तत्र गन्तुमहमीहे" (तुम्हारे बिना मैं वहाँ जाना नहीं चाहता) यहाँ 'ऋते' के योग में द्वितीया विभक्ति है। इसी प्रकार '**बिना**' आदि के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है।

(वा) अभित: परित: समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि।

वृत्ति—अभित: कृष्णम्। परित: कृष्णम्। ग्रामं समया। निकषा लंकाम्। हाकृष्णाभक्तम्। तस्य शोच्यते इत्यर्थ: वुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्।

अर्थ एवं व्याख्या—अभित: (दोनों ओर) परित: (चारों ओर) समया (समीप) निकषा (समीप) हा (हाय) प्रति (ओर, तरफ) के योग में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। यथा—'अभित: कृष्णम्' (कृष्ण के दोनों ओर) 'परित: कृष्णम्' (कृष्ण के चारो ओर) 'ग्रामं समया' (गाँव के समीप) 'निकषा लंकाम्' (लंका के समीप) हा 'कृष्णाभक्तम्' (कृष्ण के अभक्त के लिए हाय (शोक))।

वुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित् (भूखे को कुछ नहीं सूझता) इन प्रयोगों में अभित: आदि के योग में कृष्णम्, ग्रामम्, लंकाम्, कृष्णाभक्तम्, वुभुक्षितम् इन शब्दों में द्वितीया विभक्ति है।

१२. अन्तराऽन्तरेण युक्ते २/३/४।।

वृत्ति—आभ्यां योगे द्वितीया स्यात्। अन्तरा त्वां मां हरि:। अन्तरेण हरिं न सुखम्।

अर्थ एवं व्याख्या—अन्तरा (बीच में) अन्तरेण (विषय में, बिना और छोड़कर) के योग में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। यथा—

अन्तरा त्वां मां हरि: (तुम्हारे और मेरे बीच में हरि है) यहाँ '**अन्तरा**' के योग में त्वाम्, माम् में द्वितीया विभक्ति हुई।

अन्तरेण हरिं न सुखम् (हरि के बिना सुख नहीं है) यहाँ 'अन्तरेण' के योग में 'हरिम्' में द्वितीया विभक्ति है।

१३. कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे २/३/५।।

वृत्ति—इह द्वितीया स्यात्। मासं कल्याणी। मासमधीते। मासं गुड़धाना:। क्रोशं कुटिला नदी। क्रोशमधीते। क्रोशं गिरि:। अत्यन्त संयोगे किम् ? मासस्य द्विरधीते। क्रोशस्यैकदेशे पर्वत:।

अर्थ एवं व्याख्या—जब कोई क्रिया लगातार कुछ समय तक होती रहे या कोई वस्तु कुछ दूरी तक लगातार हो उसमें कोई व्यवधान न हो तो उस 'समय वाचक' और 'मार्ग वाचक' (अध्वन्) शब्दों में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—

मासं कल्याणी—(मास भर कल्याणकारिणी है) यहाँ पर कल्याणकारिणी गुण मास भर लगातार बना रहता है अतः कालवाचक 'मास' शब्द में द्वितीया विभक्ति होती है।

मासमधीते—(महीने भर पढ़ता है) यहाँ पर अध्ययन क्रिया लगातार मास भर तक चल रही है। अतः अध्ययन क्रिया के अत्यन्त संयोग में 'मास' शब्द में द्वितीया विभक्ति है।

मासं गुड़धाना—(मास भर गुड़धान है) यहाँ गुड़ धान रूप द्रव्य का मास के साथ निरन्तर संयोग होने से द्वितीया है।

क्रोशं कुटिला नदी (नदी कोशभर तक लगातार टेढ़ी है) यहाँ पर नदी का लगातार कोश भर तक टेढ़ा होना यह गुण मार्गवाचक 'क्रोश' के साथ अत्यन्त संयोग रखता है। अतः 'क्रोशम्' में द्वितीया विभक्ति है।

क्रोशमधीते (कोश भर पढ़ता है) इस अध्ययन क्रिया का कोश भर तक लगातार सम्बन्ध है, अतः 'क्रोशम्' शब्द में द्वितीया है।

क्रोशं गिरी: (कोश भर तक (लगातार) पर्वत है।) यहाँ 'क्रोशम्' में गिरिः का लगातार सम्बन्ध रहने से 'क्रोशम्' में द्वितीया है।

"अत्यन्तसंयोगे किमिति"—यदि गुण, क्रिया, द्रव्यवाचक, कालवाचक, या मार्गवाचक के साथ अत्यन्त संयोग (लगातार सम्बन्ध) होता है तो कालवाची या मार्गवाची शब्द से द्वितीया विभक्ति होती है। यदि इनमें लगातार सम्बन्ध नहीं होता है तो द्वितीया नहीं होती है, यथा—

मासस्य द्विरधीते—(महीने में दो बार पढ़ता है) यहाँ पर अध्ययन क्रिया के साथ 'मास' का लगातार सम्बन्ध नहीं है, अतः यहाँ पर मास में द्वितीया विभक्ति न होकर सम्बन्ध की विवक्षा में 'मास' में षष्ठी विभक्ति होती है। इसी प्रकार

क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः (कोश के एक देश में पर्वत है) यहाँ पर मार्गवाचक शब्द क्रोश से पूर्ण रूप से सम्बन्ध न होने से द्वितीया न होकर षष्ठी विभक्ति हुई।

(वा) जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम्।

वृत्ति—जल्पयति भाषयति वा धर्मंपुत्रं देवदत्तः।

अर्थ—जल्प्, भाष् आदि धातुओं के अण्यन्तावस्था का कर्त्ता **ण्यन्तावस्था** में कर्मसंज्ञक होता है।

व्याख्या—जहाँ पर 'जल्प्' और 'भाष्' धातु आये तो साधारण दशा का कर्त्ता प्रेरणार्थक दशा में कर्म हो जाता है। यथा—

पुत्रं धर्मं जल्पयति भाषयति वा (पुत्र से धर्म कहलवाता है) यहाँ पर साधारण दशा का कर्त्ता (पुत्रो धर्मं जल्पति भाषते वा) प्रेरणार्थक दशा में जल्पयति, भाषयति होकर कर्त्ता 'पुत्रम्' में कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई।

(वा०) नीवह्योर्न।

वृत्ति—नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन।

अर्थ एवं व्याख्या—'नी' और 'वह्' णिजन्त धातुओं के प्रयोज्य कर्त्ता की कर्मसंज्ञा नहीं होती है।

अर्थात् नी और वह् धातुओं के प्रेरणार्थक प्रयोग में इनका अण्यन्तावस्था का कर्त्ता ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञक नहीं होता है। यथा—

नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन (सेवक से भार ढुलवाता है) यहाँ पर उक्त वार्तिक सूत्र के द्वारा कर्म संज्ञा का निषेध होकर, 'भृत्यम्' न होकर 'भृत्येन' ही हुआ।

(वा) नियन्तृ कर्तृकस्य वहेरनिषेधः।

वृत्ति—वाहयति रथं वाहान् सूतः।

अर्थ एवं व्याख्या—उक्त वार्तिक के द्वारा कर्म संज्ञा का निषेध वहाँ नहीं होगा, जहाँ, 'वह्' धातु का 'नियन्ता' (हाँकने वाला) होगा। अर्थात् नियन्ता होने से उसकी कर्म संज्ञा हो जायेगी। यथा—

'वाहयति रथं वाहान् सूतः' (सूत घोड़ों से रथ ढुलवाता है) यहाँ पर प्रेरणार्थक 'वह्' धातु का कर्त्ता नियन्ता (हाँकने वाला) है, तो वाहान् की कर्मसंज्ञा का निषेध न होकर द्वितीया विभक्ति ही हुई।

(वा) आदिखाद्योर्न।

वृत्ति—ओदयति खादयति वान्नं वटुना।

अर्थ एवं व्याख्या—'अद्' और 'खाद्' धातुओं के प्रयोज्य कर्त्ता की प्रेरणार्थक में कर्मसंज्ञा नहीं होगी। यथा—

आदयति, खादयति वान्नं वटुना—(ब्रह्मचारी से अन्न खिलवाता है) यहाँ पर प्रयोज्य कर्त्ता 'वटु' कर्म संज्ञा न होकर तृतीया विभक्ति हुई।

(वा) भक्षेरहिंसार्थस्य न।

वृत्ति—भक्षयत्यन्नं वटुना। अहिंसार्थस्य किम्—भक्षयति वलिवर्दान् सस्यम्।

अर्थ एवं व्याख्या—जब 'भक्ष्' धातु का अर्थ हिंसा (पीड़ा या हानि पहुँचाना) नहीं होता है, तब प्रयोज्य कर्त्ता की कर्मसंज्ञा नहीं होती है। यथा—

भक्षयति अन्नं वटुना (ब्रह्मचारी से अन्न खिलवाता है) यहाँ पर अन्न भक्षण में हिंसा भाव नहीं है, अतः उक्त वार्तिक के द्वारा कर्म संज्ञा का निषेध हो जायेगा, और 'वटु' में द्वितीया न होकर तृतीया ही रहेगी।

जब 'भक्ष्' धातु का प्रयोग हिंसा भाव में होगा तो इस वार्तिक से निषेध न होकर 'गति, बुद्धि' सूत्र से कर्म संज्ञा होकर भक्षयति वलीवर्दान् सस्यम् (बैलों को धान खिलाता है) इस वाक्य में धान भक्षण में हिंसा भाव होकर 'वलीवर्दान्' की कर्म संज्ञा हो जायेगी।

(वा) दृशेश्च।

वृत्ति—दर्शयति हरिं भक्तान्। सूत्रे ज्ञानसामान्यार्थानामेव ग्रहणं न तु तद्विशेषार्थानामित्यनेन ज्ञाप्यते। तेन स्मरति जिघ्रतीत्यादिनां न। स्मारयति, घ्रापयति वा देवदत्तेन।

अर्थ—दृश् (देखना) धातु का अण्यन्तावस्था का कर्त्ता ण्यन्तावस्था के प्रयोग में कर्म संज्ञा होता है।

व्याख्या—'दृश्' धातु का सामान्य दशा का कर्त्ता प्रेरणार्थक के प्रयोग में कर्मसंज्ञक हो जाता है। यद्यपि 'गतिबुद्धि०' आदि सूत्र में ज्ञानार्थक धातुओं का ग्रहण होता है, परन्तु ज्ञानविशेष की वाचक 'स्मरति, जिघ्रति' आदि का नहीं, इसका ज्ञान तो 'दृशेश्च' इस वार्तिक में दृश् धातु के ग्रहण से होता है। इसके ज्ञान का फल है कि "स्मारयति घ्रापयति वा देवदत्तेन" में देवदत्त की कर्म संज्ञा नहीं होगी।

दर्शयति हरिं भक्तान् (भक्तों को हरि दिखलाता है) यहाँ पर अण्यन्तावस्था के कर्त्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा होकर 'भक्त' में द्वितीया विभक्ति हुई।

१४. कर्मप्रवचनीयाः १/४/८३।।

वृत्ति—इत्याधिकृत्य।

अर्थ—यहाँ से कर्म प्रवचनीय संज्ञा का अधिकार है।

व्याख्या—पाणिनीय व्याकरण में कुछ ऐसे अव्ययों की कर्मसंज्ञा की गयी है जो न तो किसी क्रिया विशेष के द्योतक हों, न सम्बन्ध के ही वाचक हों, और न किसी अन्य क्रिया पद को ही लक्षित कराये, परन्तु वाक्यान्तर्गत पदों में भेद दर्शक हो अर्थात् विभक्ति विधायक हों। इनके योग में भी प्रायः कर्म कारक ही विधान होता है। **वाक्यपदीयकार** ने कहा है—

> **"क्रियाया द्योतको नायं, सम्बन्धस्य न वाचकः।**
> **नापि क्रियापदाक्षेपी, सम्बन्धस्य तु भेदकः।।"**

१५. अनुर्लक्षणे १/४/४८।।

वृत्ति—लक्षणे द्योत्येऽनुक्त संज्ञः स्यात्। गत्युपसर्ग संज्ञापवादः।

अर्थ एवं व्याख्या—किसी विशेष लक्षण (हेतु) को द्योतित करने में अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

अर्थात् जब कोई विशेष हेतु लक्षित होता है तो अनु की कर्म प्रवचीनीय संज्ञा हो जाती है।

१६. कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया २/३/८।।

वृत्ति—एतेन योगे द्वितीया स्यात्। जपमनु प्रावर्षत्। हेतुभूतजपोपलक्षितं वर्षणमित्यर्थः। परापि हेताविति तृतीयाऽनेन वाध्यते। 'लक्षणेत्त्थंभूत' इत्यादिना सिद्धे पुनः संज्ञाविधानसामर्थ्यात्।

अर्थ—कर्मप्रवचनीय उपसर्गों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

व्याख्या—जहाँ पर उपसर्गों का योग होता है, वहाँ पर कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा—जपमनु प्रावर्षत्—(जप करने के पश्चात् वर्षा हुई) यहाँ पर हेतु रूप 'जप' से वर्षा होती है, जब तक जप नहीं किया गया तब तक वर्षा नहीं हुई, वर्षा का लक्षण या हेतु जप था अर्थात् यहाँ पर 'अनु' अव्यय की 'अनुर्लक्षणे' सूत्र से कर्म प्रवचनीय संज्ञा होकर उक्त सूत्र से 'जपम्' में द्वितीया विभक्ति होती है।

१७. तृतीयार्थे १/४/८५।।

वृत्ति—अस्मिन् द्योत्येऽनुरुक्त संज्ञं स्यात्। नदीम न्ववसिता सेना। नद्यः सह सम्बद्धेत्यर्थः षिञ् बन्धने क्तः।

अर्थ एवं व्याख्या—तृतीया के अर्थ को प्रकट करने वाला 'अनु' कर्मप्रवचनीय संज्ञक होता है। यथा—'नदीमन्वसिता सेना'—इस वाक्य में सेना नदी के साथ सम्बद्ध है अतः नदी शब्द में तृतीया होनी चाहिए थी किन्तु यहाँ पर 'अवसित' शब्द 'अव' उपपदपूर्वक 'षिञ्' (बाँधना) धातु के योग से 'क्तप्रत्यय' करके बना है, अतः तृतीयार्थ में प्रयुक्त होने वाले अनु की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होकर 'नदीम्' में द्वितीया विभक्ति हुई।

१८. हीने १/४/८६।।

वृत्ति—हीने द्योत्येऽनुः प्राग्वत्। अनुहरिं सुराः हरे हीना इत्यर्थः।

अर्थ—हीनता को द्योतित करने में 'अनु' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

व्याख्या—जहाँ पर हीनता प्रकट होती है वहाँ पर 'अनु' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है; यथा—

अनु हरिं सुराः (देवता हरि से हीन है) यहाँ पर हीनता का अर्थ प्रकट करने वाले शब्द 'अनु' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा हो जाने से हरिम् में द्वितीया विभक्ति हुई।

१९. उपोऽधिके च १/४/८७।।

वृत्ति—अधिके हीने च द्योत्ये उपेत्यव्ययं प्राक् संज्ञं स्यात्।
अधिके सप्तमी वक्ष्यते। हीने उपहरिं सुराः।

अर्थ एवं व्याख्या—अधिक या हीन अर्थ के द्योतक 'उप' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

अर्थात् अधिक या हीन अर्थ द्योतित करने पर उप की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो जाती है, परन्तु जब वह हीन अर्थ को द्योतित करता है तो द्वितीया होती है और जब अधिक अर्थ को द्योतित करता है तब सप्तमी होती है।

यथा–उप हरिं सुराः (देवता हरि से हीन (घटकर) है) यहाँ हीनता द्योतक 'उप' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होकर हरिम् में द्वितीया विभक्ति हुई।

जब 'उप' अधिक अर्थ का द्योतक होगा तब सप्तमी विभक्ति होगी, उसे आगे कहा जायेगा।

२०. लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः १/४/९०।।

वृत्ति–एष्वर्थेषु विषयभूतेषु प्रत्यादयः उक्त संज्ञः स्युः। लक्षणे, वृक्षं वृक्षं प्रतिपर्यनु वा विद्योतते विद्युत। इत्थंभूताख्याने, भक्तो विष्णुं प्रतिपर्यनु वा। भागे, लक्ष्मीर्हरिं प्रतिपर्यनु वा। हरेर्भाग इत्यर्थः। वीप्सायाम्, वृक्षं वृक्षं प्रतिपर्यनु वा सिञ्चति। अत्रोपसर्गत्वा भावान्न षत्वम्। सषु किम् परिषिञ्चति।

अर्थ–'लक्षण', 'इत्थं भूतावख्यान', 'भाग' और 'वीप्सा' इन अर्थों में 'प्रति', 'परि' और 'अनु' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है।

व्याख्या–लक्षण (किसी की ओर निर्देश करना) इत्थं भूताख्यान (यह इस प्रकार का है, यह बतलाना) भाग (यह उसके हिस्से में है, यह बतलाना) वीप्सा (द्विरुक्ति दिखलाना) अर्थों में प्रति, परि तथा अनु की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा–

वृक्षं वृक्षं प्रति परि अनु वा विद्योतते विद्युत (वृक्ष की ओर बिजली चमकती है) इस वाक्य में वृक्ष बिजली चमकने को लक्षित करता है, अर्थात् वह ज्ञापक लक्षण है। इस ज्ञापक लक्षण को प्रकट करने वाले प्रति, परि, अनु की उक्त नियम से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होकर वृक्षम् में द्वितीया विभक्ति हुई।

भक्तो विष्णुं प्रति परि अनु वा (विष्णु के प्रति भक्त है) इस प्रयोग में इत्थं भूताख्यान (यह इस प्रकार का है, ऐसा कथन) अर्थ में प्रति, परि, अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होकर विष्णुम् में द्वितीया विभक्ति हुई।

लक्ष्मीर्हरिं प्रति परि अनु वा (लक्ष्मी हरि का भाग है) यहाँ 'भाग' अर्थ में प्रयुक्त प्रति परि, अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उनके योग में हरिम् में द्वितीया विभक्ति हुई।

वृक्षं वृक्षं प्रति परि अनु वा सिञ्चति–(प्रत्येक वृक्ष को सींचता है) यहाँ वीप्सा (व्याप्तुमिच्छा अर्थात् किसी क्रिया का प्रत्येक वस्तु से सम्बन्ध करने की इच्छा) अर्थ में प्रति, परि, अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

२१. अभिरभागे १/४/९१।।

वृत्ति–भागवर्जे लक्षणादावभिरुक्त संज्ञः स्यात्। हरिमभिवर्तते।

भक्तो हरिमभि। देवं देवमभि सिञ्चति। अभागे किम् ? यदत्र ममाभिष्यात्तद् दीयताम्।

अर्थ—केवल भाग अर्थ को छोड़कर शेष उपर्युक्त तीन अर्थों में वर्तमान 'अभि' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

व्याख्या—अर्थात् भाग अर्थ में 'अभि' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा न होने से केवल वहाँ पर उपसर्ग संज्ञा ही बनी रहती है। शेष उपर्युक्त तीन अर्थों में वर्तमान अभि की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है; यथा—

"१. हरिमभि वर्तते, २. भक्तो हरिमभि, ३. देवं देवमभिषिञ्चति।"

इन वाक्यों में क्रमशः लक्षण इत्थं भूताख्यान और वीप्सा अर्थ का द्योतक 'अभि' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होकर 'हरिम्' में द्वितीया विभक्ति हुई।

'भाग' अर्थ में जब 'अभि' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा न होकर केवल उपसर्ग संज्ञा होती है तो "यदत्र ममाभिष्यात् दद् दीयताम्" 'जो मेरा भाग हो वह दे दीजिए' इस वाक्य में अभि के परे स्यात् के सकार का षकार हो जाता है। 'उपसर्ग प्रादुर्भ्यामस्तिर्यच परः' इस सूत्र से षकार आदेश हुआ।

२२. सुः पूजायाम् १/४/९४।।

वृत्ति—सुसिक्तम्। सुस्तुतम्। अनुपसर्गत्वान्न षः। पूजायां किम् सुसिक्तं किं तवात्र, क्षेपोष्यम्।

अर्थ—पूजा अर्थ में वर्तमान 'सु' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

व्याख्या—सुसिक्तम् (अच्छी तरह सींचा गया) यहाँ पर 'सु' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उपसर्ग के अभाव में 'सिक्तम्' के सकार का षकार नहीं होता। इसी प्रकार 'सुस्तुतम्' में भी षत्व नहीं होता है, किन्तु पूजा अर्थ के भिन्न अर्थ वाले 'सु' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा नहीं होती है केवल उपसर्ग संज्ञा रहती है, जिसका फल होता है—'सुषिक्तं किं तवात्र' (मैंने सुचारु रूप से सींचा है, तुम्हारा इसमें क्या) यहाँ निन्दा अर्थ है अतः 'सु' के परे 'सिक्तम्' के सकार का षत्व हो गया।

२३. अतिरतिक्रमणे च १/४/९५।।

वृत्ति—अतिक्रमणे पूजायां चातिः कर्मप्रवचनीय संज्ञः स्यात्। अति देवान् कृष्णः।

अर्थ एवं व्याख्या—'अतिक्रमण' और 'पूजा' के अर्थ में 'अति' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा—

अति देवान् कृष्णः (कृष्ण देवों से बढ़कर है या कृष्ण देवों से पूज्य है) इस वाक्य में कर्मप्रवचनीय संज्ञक 'अति' के योग में देवान् में द्वितीया विभक्ति हुई।

२४. अपिः पदार्थसम्भावनाऽन्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु १/४/९६।।

वृत्ति—एषु द्योत्येषु अपिरुक्त संज्ञः स्यात्। सर्पिषोऽपि स्यात्। अनुपसर्गत्वान्न षः। सम्भावनायां लिङ्। तस्या एव विषयभूते भवने कर्तृदौर्लभ्यप्रयुक्तं दौर्लभ्यं द्योतयन्नपि शब्दः स्यादित्यनेन सम्बध्यते सर्पिष इति षष्ठी तु अपि शब्दवलेन गम्यमानस्य विन्दोरवयवावयविभावेसम्बन्धे। इयमेव ह्यपिशब्दस्य पदार्थ द्योतकता

नाम। द्वितीया तु नेह प्रवर्तते। सर्पिषो विन्दुना योगो न त्वपिनेत्युक्तत्वात्। अपिस्तुयाद्विषणुम्। सम्भावनं शक्त्युत्कर्षमाविष्कर्तुमत्युक्तिः। अपि स्तुहि। अन्वव सर्गः कामचारानुज्ञज्ञ। धिग्देवदत्तमपि स्तुयाद् वृषलम्। गर्हा-अपि सिञ्च। अपि स्तुहि। समुच्चये।

अर्थ—पदार्थ, सम्भावना, अन्ववसर्ग (कामाचारानुज्ञा), गर्हा तथा समुच्चय इन अर्थों को द्योतित करने पर 'अपि' शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

व्याख्या—पदार्थ का अर्थ है 'पद का अर्थ' अर्थात् अप्रयुक्त अर्थ को द्योतित करना ही पदार्थ है। 'सर्पिषोऽपि स्यात्' इस प्रयोग में 'अपि' अप्रयुक्त बिन्दु का द्योतक है। अतः अपि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उपसर्ग संज्ञा के अभाव में 'स्यात्' के सकार का षत्व नहीं होता है। क्योंकि सकार का षत्व केवल उपसर्ग के बाद ही हो सकता है।

सर्पिषोऽपि स्यात् (घृत की बूँद भी होती है) इस वाक्य में 'स्यात्' शब्द 'उस्' धातु से सम्भावनार्थक लिङ् लकार में बना है। यह सम्भावना किस पदार्थ की है ? इस जिज्ञासा से अस् धातु का अर्थ (सत्ता या भवन) 'होना' ही सम्भावना का विषय है अर्थात् होने की सम्भावना है। इस स्थिति में कर्त्ता (बिन्दु) के अभाव में 'अपि' उस अप्रयुक्त कर्त्ता (भवन-होने अर्थ का कर्त्ता बिन्दु है जो कि प्रयुक्त नहीं है) को द्योतित करता है और इस प्रकार कर्त्ता दुर्लभता द्योतित करता हुआ वह अपि क्रिया के साथ सम्बद्ध हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस वाक्य में प्रयुक्त 'अपि' स्यात् क्रिया के कर्त्ता, बिन्दु के अर्थ को द्योतित करने के लिए प्रयुक्त हुआ है अतएव वह बिन्दु के समान ही, स्यात् क्रिया के अर्थ होने की सम्भावना को तथा बिन्दु को भी द्योतित करता है इसीलिए वह बिन्दु के समान स्यात् क्रिया से सम्बद्ध हो जाता है, यही 'अपि' शब्द की पदार्थ द्योतकता है। सर्पिस् और अपि में अवयवावयविभाव सम्बन्ध होने से यहाँ षष्ठी विभक्ति है द्वितीया विभक्ति तो यहाँ नहीं हो सकती है क्योंकि सर्पिस् का बिन्दु के साथ योग है अपि के साथ नहीं है।

'सर्पिषोऽपि स्यात्' इस प्रयोग में स्यात् यह क्रिया पद 'अस्' धातु से लिङ् लकार में बनता है, लिङ् लकार सम्भावना अर्थ में होता है, इस सम्भावना का विषय 'अस्' धातु का अर्थ 'होना' है। अर्थात् स्यात् का अर्थ है 'होने की सम्भावना'। 'किसके होने की सम्भावना' ? इस जिज्ञासा में कर्त्ता होने की सम्भावना ही होती है। वह कर्त्ता (बिन्दु) यहाँ प्रयुक्त नहीं है। अतः 'अपि' यहाँ उसे द्योतित करता है, और इस प्रकार वह न केवल बिन्दु को ही द्योतित करता है अपितु बिन्दु कर्त्ता की दुर्लभता को प्रकट करता हुआ स्यात् क्रिया जन्य दुर्लभता को भी प्रकट करने के कारण वह स्यात् से सम्बद्ध भी हो जाता है। यहाँ अपि से बिन्दु अर्थ गम्य होता है। सर्पिस् से बिन्दु का अवयवावयविभाव सम्बन्ध है। बिन्दु 'अवयव' सर्पिस् (घृत) 'अवयवी' इस प्रकार अवयवावयविभाव सम्बन्ध होने से 'सर्पिषः' में षष्ठी विभक्ति है द्वितीया नहीं। अपि शब्द की यही पदार्थ द्योतकता है और इसी अर्थ में अपि की उक्त संज्ञा होकर षत्वाभाव होता है।

अपि स्तुयाद विष्णुम् (क्या विष्णु की स्तुति कर सकेगा) यहाँ सम्भावना को द्योतित करने के अर्थ में प्रयुक्त अपि की कर्मप्रवचीय संज्ञा होने से उपसर्ग संज्ञा के अभाव से 'स्तुयात्' के स् को ष् नहीं हुआ। सम्भावना का अर्थ शक्ति के उत्कर्ष को प्रकट करने के लिए अत्युक्ति करना है।

अपि स्तुहि (चाहो तो स्तुति करो या नहीं) यहाँ अन्ववसर्ग (स्वेच्छानुसार कार्य करने की अनुज्ञा) अर्थ में 'अपि' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होकर षत्वाभाव है।

धिग् देवदत्तम् अपि स्तुयाद् वृषलम् (देवदत्त को धिक्कार है जो कि वह शूद्र की स्तुति करता है) यहाँ गर्हा (निन्दा) अर्थ में 'अपि' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होकर षत्वाभाव होता है।

अपि सिञ्च अपि स्तुहि (सींचो भी, स्तुति भी करो) यहाँ समुच्चय अर्थ में 'अपि' की उक्त संज्ञा का फल षत्वाभाव है।

तृतीया विभक्ति: (करण)

२५. स्वतन्त्रः कर्त्ता १/४/५४।।

वृत्ति—क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षतोऽर्थः कर्त्तास्यात्।

अर्थ—क्रिया में स्वतन्त्र रूप से विवक्षित अर्थ कर्तृसंज्ञक होता है।

व्याख्या—वाक्य में कर्त्ता, कर्म, क्रिया आदि होते हैं। वाक्य में जो प्रधान होता है या क्रिया की सिद्धि जिससे होती है, जो वाक्य में प्रधान रूप से अवस्थित रहता है, जिसके बिना क्रिया हो ही नहीं सकती, ऐसे कारक की इस सूत्र से कर्तृसंज्ञा होती है।

"विवक्षात कारकाणि भवन्ति" इस नियम के अनुसार प्रत्येक कारक विवक्षाधीन है अतः क्रिया का आश्रय जड़ या चेतन जो भी हो, वह कर्त्ता कहा जायेगा। कर्त्ता ही क्रिया का जनक होता है। कर्त्ता के अनुसार ही क्रिया के लिङ् संख्या आदि का निर्धारण होता है।

२६. साधकतमं करणम् १/४/४२।।

वृत्ति—क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात्।

अर्थ—क्रिया की सिद्धि में जो कारक सबसे अधिक सहायक होता है उसकी करणसंज्ञा होती है।

व्याख्या—'साधकतम' शब्द का अर्थ है सबसे अधिक सहायक या प्रकृष्ट उपकारक। जिस पदार्थ के व्यापार के अनन्तर क्रिया की सिद्धि हो जाती है, वही प्रकृष्ट उपकारक होता है उसी की करणसंज्ञा होती है। यथा—

रामः जलेन मुखं प्रक्षालयति (राम जल से मुख को धोता है) यद्यपि इस वाक्य में 'जल' और राम का 'हाथ' दोनों सहायक हैं तथापि हाथ वाक्य के अन्तर्गत होने से

सहायक नहीं है केवल जल ही सबसे अधिक सहायक कारक है अतः जल की ही उक्त सूत्र से करण संज्ञा होगी। करणसंज्ञा का फल तृतीया विभक्ति करना है। अतः जल में तृतीया विभक्ति होकर 'जलेन' बना।

२७. कर्तृकरणयोस्तृतीया २/३/१८।।

वृत्ति—अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात्। रामेण बाणेन हतो बाली।

अर्थ—अनुक्त कर्त्ता और करण में तृतीया विभक्ति होती है।

व्याख्या—रामेण बाणेन हतो बाली (राम के द्वारा बाण से बाली मारा गया) इस वाक्य में 'हत' में कर्मवाच्य में 'हन्' धातु से 'क्त' प्रत्यय होकर हतः बना। कर्त्ता अनुक्त है और बाण करण है। अतः अनुक्त कर्त्ता 'राम' और करण 'बाण' दोनों में उक्त सूत्र से तृतीया विभक्ति होती है।

(वा) प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्।

वृत्ति—प्रकृत्या चारुः। प्रायेण याज्ञिकः। गोत्रेण गार्ग्यः समेनैति। विषमेणैति। द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति। सुखने दुःखेन वा यातीत्यादि।

अर्थ एवं व्याख्या—प्रकृति आदि शब्दों से तृतीया विभक्ति होती है। अर्थात् प्रकृति आदि गण में पठित शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होती है। यथा—प्रकृत्या चारुः (स्वभाव से सुन्दर है) यहाँ पर प्रकृति शब्द से तृतीया विभक्ति होती है। इसी प्रकार—

प्रायेण याज्ञिकः (प्रायः याज्ञिक है) गोत्रेण गार्ग्यः (गोत्र से गार्ग्य है) समेनैति (समगति से आता है) विषमेणैति (विषम चलता है) इन शब्दों में भी तृतीया विभक्ति होती है।

द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति (दो-द्रोण सम्बन्धी धान्य खरीदता है) सुखेन दुःखेन वा याति (सुख अथवा दुःख से चलता है।) इन शब्दों के प्रयोग में उक्त वार्तिक सूत्र से तृतीया विभक्ति हुई।

२८. दिवः कर्म च १/४/४३।।

वृत्ति—दिवः साधकतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्, चात् करण संज्ञम्। अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति।

अर्थ—दिव् (खेलना) धातु के साधकतम् कारक की कर्मसंज्ञा होती है और करण संज्ञा भी होती है।

व्याख्या—जब 'दिव्' धातु खेलना अर्थ में हो तो उसके साधकतमम् कारक की कर्म संज्ञा होती है और करण संज्ञा भी होती है; यथा—अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति—(पाँसों से खेलता है) यहाँ पर अक्ष (पाँसे) साधकतम है, अतः करण संज्ञा होकर तृतीया विभक्ति होती है, और उक्त सूत्र से विकल्प से कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति भी होती है।

२९. संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि २/३/२२।।

वृत्ति—सं पूर्वस्य जानातेः कर्मणि तृतीया वा स्यात्। पित्रा पितरं वा संजानीते।

अर्थ एवं व्याख्या—'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'ज्ञा' धातु के कर्म में विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है।

अर्थात् जहाँ पर 'सम्' उपसर्ग पूर्वक ज्ञा धातु का योग होता है वहाँ पर कर्म में विकल्प से तृतीया विभक्ति भी होती है। यथा—

पित्रा पितरं वा संजानीते—(पिता को सम्यक् जानता है) यहाँ पर सम् + ज्ञा = संजानीते के कर्म 'पितरम्' में द्वितीया प्राप्त थी परन्तु उपर्युक्त नियम से विकल्प से तृतीया होकर 'पित्रा' भी बनता है।

३०. अपवर्गे तृतीया २/३/६।।

वृत्ति—अपवर्गः फलप्राप्तिस्तस्यां द्योत्यायां कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे तृतीया स्यात्। अह्ना क्रोशेन वाऽनुवाकोऽधीतः। अपवर्गे किम् ? मासमधीतो नायातः।

अर्थ—फल प्राप्ति या कार्य सिद्धि का बोध कराने के लिए समयवाची तथा मार्गवाची शब्दों से अत्यन्त संयोग होने पर तृतीया विभक्ति होती है।

व्याख्या—अपवर्ग का अर्थ है—'फल प्राप्ति या कार्यसिद्धि'। अर्थात् फल की प्राप्ति या कार्य की सिद्धि का बोध कराने के लिए कालवाची और मार्गवाची शब्दों से तृतीया विभक्ति होती है। यथा—

अह्ना क्रोशेन वाऽनुवाकोऽधीतः (दिनभर में अथवा कोशभर में अनुवाक पढ़ लिया) यहाँ पर 'अह्न' (कालवाचक) क्रोश (मार्गवाचक) शब्दों से तृतीया विभक्ति हुई।

अपवर्गे किम् ? अपवर्ग (फल की प्राप्ति) का प्रयोजन यह है कि निरन्तर कार्य करते हुए जब फल की प्राप्ति हो जाती है तब तृतीया विभक्ति होती है किन्तु निरन्तर कार्य करते हुए भी जब फल की प्राप्ति नहीं होती है तो कालवाचक और मार्गवाचक शब्दों में तृतीया न होकर 'कालाध्वनोरत्यन्संयोगे' सूत्र से द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—मासमधीतो नायातः (मासभर पढ़ा तो भी नहीं आया) यहाँ पर फल की प्राप्ति न होने पर मासम् में द्वितीया विभक्ति हुई।

३१. सहयुक्तेऽप्रधाने १/३/१९।।

वृत्ति—सहार्थेनयुक्ते अप्रधाने तृतीया स्यात्। पुत्रेण सहागतः पिता। एवं साकं सार्धं समं योगेऽपि। विनाऽपि तद् योगं तृतीया। 'वृद्धोयूना' १/२/६५ इत्यादि निर्देशात्।

अर्थ—'सह' के अर्थ के योग में अप्रधान शब्द में तृतीया विभक्ति होगी।

व्याख्या—'सह' (साथ) के अर्थ के योग में अप्रधान कर्त्ता का साथ देने वाले) शब्द में तृतीया विभक्ति होती है। यथा—पुत्रेण सहागतः पिता (पुत्र के साथ पिता आया)

यहाँ पर प्रधान कर्त्ता 'पिता' है और अप्रधान कर्त्ता 'पुत्र' है, अतः 'सह' के योग में पुत्र शब्द में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होकर पुत्रेण हुआ। इसी प्रकार सह के पर्यायवाची अन्य शब्दों के योग में भी तृतीया विभक्ति होती है; यथा—

रामः जानक्या साकं गच्छति (राम जानकी के साथ जाते हैं।)

सः तया सार्धं आगच्छति (वह उसके साथ आता है)।

उपाध्यायः छात्रैः समं स्नाति (उपाध्याय छात्रों के साथ स्नान करते हैं।)

यदि कहीं पर सह आदि का प्रयोग नहीं भी होता है पर उनका अर्थ ही प्रतीत होता है, तो भी सह आदि के अभाव में भी तृतीया विभक्ति होती है। यथा—'वृद्धो यूना' यहाँ पर 'यूना' में सह का योग न होने पर भी तृतीया विभक्ति हुई।

३२. येनाङ्गविकारः २/३/२०।।

वृत्ति—येनाङ्गेन विकृतेनाङ्गिनो विकारो लक्ष्यते ततस्तृतीया स्यात्। अक्ष्णा कणः।

अर्थ एवं व्याख्या—जिस विकृत अङ्ग से अङ्गी का विकार लक्षित होता है उस अङ्ग वाची शब्द से तृतीया विभक्ति होती है। यथा—अक्ष्णा काणः—(आँख से काना) यहाँ आँख के विकृत होने से व्यक्ति (अङ्गी) का कानापन लक्षित होता है अतः आँखवाची 'अक्षि' शब्द से तृतीया विभक्ति हुई। इसी प्रकार शिरसा खल्वाटः (सिर से गंजा) कर्णेन बधिरः (कान से बहिरा) पादेन खञ्जा (पैर से लंगड़ा) आदि में भी तृतीया विभक्ति होती है।

३३. इत्थंभूत लक्षणे २/३/२१।।

वृत्ति—किञ्चित् प्रकारं प्राप्तस्य लक्षणे तृतीया स्यात्। जटाभिस्तापसः।

अर्थ—किसी विशेष दशा की प्राप्त का बोध कराने वाले शब्दों में तृतीया विभक्ति होती है।

व्याख्या—'इत्थं भूत' अर्थात् किसी विशेष दशा को प्राप्त हुआ अतः जहाँ पर कोई शब्द किसी विशेष दशा की प्राप्ति सूचित करता है वहाँ पर उन शब्दों में तृतीया विभक्ति होती है। यथा—

जटाभिस्तापसः (जटाओं से तपस्वी) यहाँ पर जटाओं द्वारा व्यक्ति का तपस्वी होना लक्षित होता है अतः उक्त सूत्र से 'जटाभिः' में तृतीया विभक्ति हुई।

३४. हेतौ २/३/२३।।

वृत्ति—हेत्वर्थे तृतीया स्यात्। द्रव्यादि साधारणं निर्व्यापारसाधारणं च हेतुत्वम् करणत्वं तु क्रियामात्र विषयं व्यापार नियतं च। दण्डेन घटः। पुण्येन दृष्टो हरिः। फलमपीह हेतुः। अध्ययनेन वसति।

अर्थ—कारणवाची शब्द से तृतीया विभक्ति होती है।

व्याख्या—'कर्तृकरणयोस्तृतीया' से करण में तृतीया विभक्ति होती है और उक्त सूत्र से हेतु में तृतीया विभक्ति होती है, अतः स्पष्ट होता है कि करण और हेतु दोनों भिन्न

है। 'हेतु' तो साधारण रूप से द्रव्य, गुण और क्रिया तीनों का ही हो सकता है किन्तु 'करण' क्रिया का ही हो सकता है। अतः यहाँ हेतु में तृतीया विभक्ति होती है; यथा–

दण्डेन घटः–(दण्ड से घड़ा) यद्यपि इस वाक्य में 'दण्ड' द्रव्य में व्यापार है तथापि वह 'घट' द्रव्य का हेतु है क्रिया का जनक नहीं। अतः हेतु होने पर 'दण्ड' में तृतीया विभक्ति हुई।

पुण्येन दृष्टो हरिः (पुण्य के कारण हरिः का दर्शन हुआ) यहाँ पुण्य हरि दर्शन का हेतु है अतः उक्त सूत्र से निर्व्यापार साधरण हेतु में तृतीया विभक्ति हुई।

अध्ययनेन वसति। (अध्ययन के प्रयोजन से रहता है) यहाँ पर प्रयोजन भी हेतु द्वारा ग्रहीत होता है अतः अध्ययन में तृतीया विभक्ति हुई।

३५. पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् २/३/३२।।

वृत्ति–एभिर्योगे तृतीया स्यात् पञ्चमीद्वितीये च। अन्यतरस्यां ग्रहणं समुच्चयार्थम्। पञ्चमीद्वितीये अनुवर्तेते। पृथग् रामेण रामाद् रामं वा। एवं विना नाना।

अर्थ एवं व्याख्या–पृथक्, विना और नाना के योग में द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी विभक्ति में से किसी का भी प्रयोग हो सकता है। 'अन्यतरस्याम्' शब्द द्वारा सबको एक साथ कर दिया गया है। इसके अन्तर्गत द्वितीया और पञ्चमी विभक्तियाँ भी आ जाती हैं।

पृथक् रामेण रामात् रामं वा–(राम से भिन्न, राम के बिना) यहाँ पृथक् के योग में 'राम' में विकल्प से तृतीया, पञ्चमी तथा द्वितीया हुई। इसी प्रकार 'विना रामेण, रामात् रामं वा' तथा 'नाना रामेण, रामात् रामं वा' में भी तीनों विभक्तियाँ होंगी।

इसी प्रकार–जलं जलेन जलात् विना (जल के बिना) नाना नारी निष्फला लोकयात्रा (स्त्री के बिना लोकयात्रा या जीवनयात्रा निष्फल है।)

चतुर्थी विभक्तिः (सम्प्रदान)

३६. कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् १/४/३२।।

वृत्ति–दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदान संज्ञः स्यात्।

अर्थ एवं व्याख्या–दान कर्म के द्वारा कर्त्ता जिसे उद्देश्य बनाता है उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है।

अर्थात् दान क्रिया के द्वारा कर्त्ता जिसे चाहता है या जिस को देता है, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। सम्प्रदान का अर्थ है, 'सम्प्रदीयते यस्मै तत्सम्प्रदानम्' अर्थात् जिसे कुछ दिया जाये और दी हुई वस्तु को पुनः ग्रहण न किया जाये। यथा–'रजकस्य वस्त्रं ददाति' इस वाक्य में सम्प्रदान संज्ञा नहीं होगी, क्योंकि यहाँ पर ददाति का प्रयोग मुख्य नहीं गौण है।

३७. चतुर्थी सम्प्रदाने २/३/१३।।

वृत्ति—विप्राय गां ददाति।

अर्थ एवं व्याख्या—सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है। यथा—

विप्राय गां ददाति (ब्राह्मण को गाय देता है) यहाँ पर कर्त्ता के द्वारा ब्राह्मण को गाय दी जा रही है अतः विप्र की सम्प्रदान संज्ञा होकर उक्त सूत्र से 'विप्र' में चतुर्थी विभक्ति हुई।

(वा) क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्।

वृत्ति—पत्ये शेते।

अर्थ एवं व्याख्या—क्रिया के द्वारा कर्त्ता को जो अभिप्रेत होता है उसकी भी सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा—

पत्ये शेते—(पति के उद्देश्य से सोती है) यहाँ शयन क्रिया का अभिप्रेत पति ही है, क्योंकि पति को अनुकूल बनाने के लिए शयन किया जा रहा है अतः 'पति' शब्द की सम्प्रदान संज्ञा हुई।

३८. रुच्यर्थानां प्रीयमाणः १/४/३३।।

वृत्ति—रुच्यर्थानां धातूनां प्रयोगे प्रीयमाणोऽर्थः सम्प्रदानं स्यात्। हरये रोचते भक्तिः। अन्य कर्तृकोऽभिलाषो रुचिः।

अर्थ—रुचि अर्थ वाली धातुओं के योग में प्रसन्न होने वाले की सम्प्रदान संज्ञा होती है।

व्याख्या—यद्यपि 'रुच्' धातु के 'दीप्ति' तथा अभिप्रीति (प्रसन्नता) ये दो अर्थ है तथापि यहाँ पर प्रीयमाणः इस पद के साहचर्य से अभिप्रीति अर्थ वाली 'रुच्' धातु के होने से सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा—

हरये रोचते भक्तिः (हरि को भक्ति अच्छी लगती है) यहाँ पर भक्ति से प्रसन्न होने वाले 'हरि' है। अतः रुच् धातु के योग में प्रीयमाण 'हरि' की उक्त सूत्र से सम्प्रदान संज्ञा होकर 'हरि' में चतुर्थी विभक्ति है।

३९. क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः १/४/३७।।

वृत्ति—क्रुधाद्यर्थानां प्रयोगे यं प्रति कोपः स उक्त संज्ञः स्यात्। हरये क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति वा।

अर्थ—क्रुध्, द्रुह, ईर्ष्य, और असूय धातुओं के योग में, जिसके ऊपर क्रोध किया जाता है उसकी इस सूत्र से सम्प्रदान संज्ञा होती है।

व्याख्या—क्रुध् (क्रोध करना) द्रुह् (द्रोह-बैर करना) ईर्ष्य (ईर्ष्या करना) असूय (गुणों में दोष देखना) धातुओं के योग में तथा इन धातुओं के समान अर्थ रखने वाली धातुओं के योग में जिस पर क्रोधादि किया जाता है उसकी सम्प्रदाय संज्ञा होती है। यथा—

हरये क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति वा (हरि पर क्रोध, द्रोह, ईर्ष्या अथवा असूय करता है) यहाँ पर क्रुध, द्रुह, ईर्ष्या अथवा असूय धातुओं के प्रयोग में 'हरि' के प्रति क्रोधादि है अत: 'हरि' की सम्प्रदान संज्ञा होकर 'हरि' में चतुर्थी विभक्ति हुई।

४०. श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः १/४/३४।।

वृत्ति—एषां प्रयोगे बोधयितुमिष्टः सम्प्रदानं स्यात्। गोपी स्मरात् कृष्णाय श्लाघते, ह्नुते, तिष्ठते, शपते वा।

अर्थ—श्लाघ्, ह्नुङ्, स्था और शप् धातुओं के प्रयोग में कर्त्ता जिसपर अपना भाव प्रकट करना चाहता है उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है।

व्याख्या—श्लाघ् (प्रशंसा या स्तुति करना) ह्नुङ् (छिपना या दूर करना) स्था (ठहरना) शप् (उलाहना देना) धातुओं के प्रयोग में ज्ञीप्स्यमान पदार्थ अर्थात् कर्त्ता जिस पर अपना भाव प्रकट करना चाहता है उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा—

गोपी स्मरात् कृष्णाय श्लाघते, ह्नुते, तिष्ठते, शपते वा (गोपी कामपीड़ा से आत्म प्रशंसा से कृष्ण पर विरह भाव को प्रकट करती है, सपत्नी को हटाकर अपना भाव कृष्ण पर प्रकट करती है, ठहरते हुए अपना भाव कृष्ण पर प्रकट करती है, उपालम्भं के द्वारा कृष्ण पर अपना भाव प्रकट करती है)। इस सभी भावों में कृष्ण ही ज्ञीप्स्यमान पदार्थ है अत: कृष्ण की सम्प्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी विभक्ति हुई।

४१. तुमर्थाच्च भाववचनात् २/३/१५।।

वृत्ति—भाववचनाश्च इति सूत्रेण यो विहितस्तदन्ताच्चतुर्थीस्यात्।
यागाय याति, यष्टुं यातीत्यर्थः।

अर्थ—भाववचनाश्च ३/३/११।। इस सूत्र के द्वारा भाव में होने वाले 'घञ्' आदि प्रत्ययों का तुमुन् अर्थ में विधान किया गया है। अत: उन घञ् आदि प्रत्ययान्त शब्दों से चतुर्थी विभक्ति होती है।

व्याख्या—अर्थात् तुमुन् प्रत्ययान्त धातु के अर्थ को प्रकट करने के लिए उसी धातु से बनी हुई भाववाचक संज्ञा का प्रयोग करने पर उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—

यागाय याति इसका अर्थ है यष्टुं याति (यज्ञ करने के लिए जाता है) यहाँ पर 'यञ्' धातु से भाव में 'घञ्' प्रत्यय होकर 'याग' शब्द बनता है और यहाँ पर 'घञ्' प्रत्यय तुमुन् प्रत्ययान्त 'यष्टुम्' (यज्ञ करने के लिए) इस अर्थ को प्रकट करता है अत: उपर्युक्त नियम से 'याग' शब्द में चतुर्थी विभक्ति होती है। इसी प्रकार—शयनाय इच्छति (सोना चाहता है) उत्थानाय यतते (उठने का प्रयत्न करता है आदि।)

४२. स्पृहेरीप्सितः १/४/३६।।

वृत्ति—स्पृहयतेः प्रयोगे इष्टः सम्प्रदानं स्यात्। पुष्पेभ्यः स्पृहयति।
ईप्सितः किम्-पुष्पेभ्यो वने स्पृहयति। ईप्सितमात्रे इयं संज्ञा।
प्रकर्षविवक्षायां तु परत्वात् कर्म संज्ञा। पुष्पाणि स्पृहयति।

अर्थ—स्पृह् धातु के योग में जिसे चाहा जाता है उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है।

व्याख्या—स्पृह् (चाहना) धातु के योग में ईप्सित (चाहा हुआ) पदार्थ सम्प्रदान संज्ञक होता है। यथा—

पुष्पेभ्यः स्पृहयति (फूलों को चाहता है) यहाँ पर स्पृह् धातु के योग में ईप्सित पदार्थ पुष्प की सम्प्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी विभक्ति होती है।

ईप्सित पदार्थ की ही सम्प्रदान संज्ञा होती है। पुष्पेभ्यो वने स्पृहयति यहाँ पर वन की सम्प्रदान संज्ञा नहीं हुई क्योंकि ईप्सित पदार्थ 'पुष्प' है। 'वन' नहीं।

४३. नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च २/३/१६।।

वृत्ति—एभिर्योगे चतुर्थी स्यात्। हरये नमः। प्रजाभ्यःस्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्, तेन दैत्येभ्यो हरिरलं, प्रभुः, समर्थः शक्तः इत्यादि।

अर्थ—नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् तथा वषट् शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—

हरये नमः (हरि को नमस्कार है) यहाँ पर नमः के योग में हरये में चतुर्थी विभक्ति है।

व्याख्या—जहाँ पर नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् और वषट् इन शब्दों का योग हो वहाँ पर चतुर्थी विभक्ति होती है।

हरये नमः (हरि को नमस्कार हो) यहाँ पर नमः के योग में 'हरये' में चतुर्थी विभक्ति हुई।

प्रजाभ्यः स्वस्ति (प्रजाओं के लिए कल्याण हो) यहाँ पर स्वस्ति के योग में 'प्रजाभ्यः' में चतुर्थी विभक्ति हुई।

अग्नये स्वाहा (अग्नि के लिए स्वाहा) यहाँ पर स्वधा के योग में 'अग्नये' में चतुर्थी विभक्ति हुई।

पितृभ्यः स्वधा (पितरों के लिए स्वधा) यहाँ पर स्वधा के योग में 'पितृभ्यः' में चतुर्थी विभक्ति हुई।

इन्द्राय वषट् (इन्द्र के लिए वषट् (आहुति) यहाँ पर वषट् के योग में 'इन्द्राय' में चतुर्थी विभक्ति हुई।

दैत्येभ्यो हरिः अलम् (हरि दैत्यों के लिए पर्याप्त है) यहाँ पर 'अलम्' का अर्थ पर्याप्त से है, निषेध से नहीं। इसलिए पर्याप्त अर्थ वाले 'अलम्' शब्द का योग होने पर 'दैत्येभ्यो' में चतुर्थी विभक्ति हुई।

जहाँ पर 'अलम्' शब्द निषेधार्थक होता है वहाँ पर तृतीया का प्रयोग होता है, जहाँ पर्याप्त होता है वहाँ चतुर्थी। प्रभु आदि शब्दों के योग में षष्ठी भी होती है, यथा—प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य इत्यादि।

'उपपदविभक्ते कारक विभक्तिर्बलीयसी' अर्थात् उपपद विभक्ति से कारक विभक्ति बलवती होती है। उपपद विभक्ति उसे कहते हैं जो किसी पद के निमित्त से होती है, यथा—**हरये नमः** यहाँ नमः इस पद के कारण हरये में चतुर्थी विभक्ति होती है अतः यह उपपद विभज्ति है। कारक विभक्ति उसे कहते है जो क्रिया के सम्बन्ध से होती है, यथा—'नमस्करोति देवान्' यहा नमस्करोति इस क्रिया पद के सम्बन्ध से देवान् में द्वितीया विभक्ति होती है। उपपद विभक्ति से कारक विभक्ति बलवान होती है—इस कथन का आशय है कि जहाँ उपपद विभक्ति और कारक विभक्ति दोनों ही प्राप्त होंगी वहाँ उपपद के सम्बन्ध से होने वाली विभक्ति की अपेक्षा क्रिया के सम्बन्ध से होने वाली विभक्ति होती है, यथा—'नमस्करोति देवान्' यहाँ नमः के योग में 'देव' शब्द से चतुर्थी विभक्ति प्राप्त होती है, परन्तु 'नमस्करोति' इस क्रिया पद के कारण यहाँ उपपद चतुर्थी विभक्ति होकर कारक विभक्ति द्वितीया ही होती है।

कथन अर्थ वाली कथ्, ख्या, शंस्, एवं चक्ष् धातुओं के अकथित कारक तथा 'नि' पूर्वक प्रेरणार्थक 'विद्' धातु के साधारण दशा के कर्त्ता का कर्म में प्रयोग न होकर सम्प्रदान रूप में प्रयोग होता है; यथा—**'आर्ये। कथयामि ते भूतार्थम्'** (देवि, तुमसे सत्य कहता हूँ) 'इमां वनस्पतिसेवां काश्यपाय निवेदयावहे' (वृक्षों की यह सेवा कण्व ऋषि को निवेदित कर दें)।

भेजना अर्थ वाली धातुओं के प्रयोग में जिस व्यक्ति के पास कोई भेजा जाता है उसमें चतुर्थी और जिस स्थान पर भेजा जाता है उसमें द्वितीया होती है। यथा—'भोजेन दूतों रघवे विसृष्टः' (महाराज भोज ने रघु के पास दूत भेजा)।

(वा०) तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्य।

वृत्ति—मुक्तये हरिं भजति।

अर्थ—जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता है उससे चतुर्थी विभक्ति होती है।

व्याख्या—'तादर्थ्य' अर्थात् 'उसके लिए' इस अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है तात्पर्य यह है कि जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य होता है उस प्रयोजन वाचक शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है।

मुक्तये हरिं भजति (मुक्ति के लिए हरि को भजता है) यहाँ 'मुक्ति' कार्य का प्रयोजन है अतः 'मुक्तये' में उक्त सूत्र से चतुर्थी विभक्ति हुई।

इसी प्रकार काव्यं यशसे (काव्य यश के लिए होता है) अतः यहाँ पर यशसे में चतुर्थी विभक्ति हुई।

विशेष—जिस वस्तु को बनाने के लिए किसी दूसरी वस्तु का अस्तित्व रहता है, उसमें चतुर्थी होती है।

यथा—'शकटाय दारु' (गाड़ी के लिए लकड़ी)।

'आभूषणाय सुवर्णम्' (आभूषण के लिए सोना।)

पञ्चमी विभक्तिः (अपादान)

४४. ध्रुवमपायेऽपादानम् १/४/२४।।

वृत्ति—अपायो विश्लेषः, तस्मिन् साध्ये यद् ध्रुवम् अवधिभूतं कारकं तद् अपादानं स्यात्।

अर्थ—'अपाय' का अर्थ है विश्लेष अर्थात् अलग होना। उसके होने या किये जाने पर 'ध्रुव' अर्थात् अवधि भूत कारक जिससे अपाय हो रहा हो उसकी उक्त सूत्र से 'अपादान संज्ञा' होती है।

व्याख्या—किसी वस्तु या व्यक्ति के अलग होने में जो कारक ध्रुव अर्थात् अवधि अर्थात् सीमा रूप (जहाँ से अलग होता है) होता है उसकी अपादान संज्ञा होती है। यथा—'घर से आता है' यहाँ पर 'घर' से अलग हो रहा है और 'घर' अवधि (सीमा) रूप है अतः उसकी अपदान संज्ञा होगी।

४५. अपादाने पञ्चमी २/३/२८।।

वृत्ति—ग्रामादायाति। धावतोऽश्वात् पतति इत्यादि।

अर्थ—अपादान कारक में पञ्चमी विभक्ति होती है।

व्याख्या—जो कारक अपादान संज्ञक होते इस सम्बन्ध में कहा गया है—"अपाये यदुदासीनं चलं वा यदि वाऽचलम् ध्रुवमेव तदावेशात् तदपादानमुच्यते।।" अर्थात् अपाय या विभाग होने पर जो वस्तु उदासीन है चाहे वह चल हो या अचल, उसे ही ध्रुव होने से 'अपादान' कहा जाता है। यथा—

ग्रामात् आयाति (गाँव से आता है) यहाँ अवधिभूत कारक ग्राम की अपादान संज्ञा होकर प्रकृतसूत्र से पञ्चमी विभक्ति होती है।

धावतोऽश्वात् पतति (दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है) यद्यपि यहाँ अवधिभूत पदार्थ 'अश्व' ध्रुव या स्थिर नहीं है तथापि 'पतति' क्रिया के प्रति अवधि भूत होने से अपादान संज्ञक होने से 'अश्व' में पञ्चमी विभक्ति हुई।

इसी प्रकार 'वृक्षात् पत्राणि पतन्ति' (वृक्ष से पत्ते गिरते हैं) वृक्ष की अपादान संज्ञा होकर पञ्चमी विभक्ति हुई।

४६. भीत्रार्थानां भयहेतुः १/४/२५।।

वृत्ति—भयार्थानां त्राणार्थानां च प्रयोगे भयहेतुरपादानं स्यात्।

चौराद् बिभेति। चौरात् त्रायते। भयहेतुः किम् ? अरण्ये विभेति त्रायते इति वा।

अर्थ—भय अर्थ वाली और रक्षा अर्थ वाली धातुओं के प्रयोग में भय के हेतु की (जिससे डरा जाता हो) अपादान संज्ञा होती है।

व्याख्या—'भय'' अर्थक और 'रक्षा' अर्थक धातुओं का योग होने पर जिससे भयभीत हो या जिससे रक्षा हो उस भय के हेतुभूत कारक की अपादान संज्ञा होती है, यथा—

चौराद् 'बिभेति' (चोर से डरता है) यहाँ पर भय का हेतु चोर है अतः चोर की अपादान संज्ञा होकर चोर में पञ्चमी विभक्ति होकर 'चौरात्' हुआ।

चौरात् त्रायते (चोर से रक्षा करता है) यहाँ पर त्रायते का योग होने से 'चौरात्' की अपदान संज्ञा होकर पञ्चमी विभक्ति हुई।

४७. अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति १/४/२८।।

वृत्ति—व्यवधाने सति यत्कर्तृकस्यात्मनो दर्शनस्याभावमिच्छति तद् अपादानंस्यात्। मातुः निलीयते कृष्णः।

अर्थ—जिससे अपने आपको छिपाना चाहता है उसकी अपादान संज्ञा होती है।

व्याख्या—'अन्तर्धि' का अर्थ है—व्यवधान अर्थात किसी वस्तु द्वारा व्यवधान होने पर ही अपादान संज्ञा होती है। और यदि कोई छिपने की इच्छा रखता हुआ भी देख लिया जाये तो भी अपादान संज्ञा होती है। यथा—

मातुर्निलीयते कृष्णः (कृष्ण अपनी माता से छिपता है) यहाँ पर कृष्ण अपने आपको माता से छिपाता है अतः माता की अपादान संज्ञा होकर 'मातुः' में पञ्चमी विभक्ति हुई।

४८. आख्यातोपयोगे १/४/२९।।

वृत्ति—नियमपूर्वकं विद्यास्वीकारे वक्ता प्राक् संज्ञः स्यात्। उपाध्यायाद् अधीते।

अर्थ—नियम पूर्वक विद्या ग्रहण करने में वक्ता या अध्यापक की अपादान संज्ञा होती है।

व्याख्या—'उपयोग' का अर्थ है नियमपूर्वक विद्या का ग्रहण करना। अतः नियमपूर्वक विद्या ग्रहण करने में 'आख्यात' (अध्यापक या शिक्षक) की अपादान संज्ञा होती है। यथा—

उपाध्यायाद् अधीते—(उपाध्याय से पढ़ता है) यहाँ पर 'उपाध्याय' से नियमपूर्वक विद्याध्ययन क्रिया जा रहा है अतः 'उपाध्याय' की अपादान संज्ञा होकर उसमें पञ्चमी विभक्ति हुई।

४९. जनिकर्तुः प्रकृतिः १/४/३०।।

वृत्ति—जायमानस्य हेतुरपादानं स्यात्। ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते।

अर्थ—उत्पन्न करने वाले का हेतु अपादान संज्ञक होता है।

व्याख्या—'जनि' का अर्थ है 'उत्पत्ति' 'जनिरुत्पत्तिरुद्भवः। जनि कर्त्ता से उत्पन्न होने—जायमान का जो हेतु होता है उसकी अपादान संज्ञा होती है। यथा—

ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते (ब्रह्मा से प्रजायें उत्पन्न होती हैं) यहाँ पर जायमान प्रजाओं की उत्पत्ति का हेतु 'ब्रह्मा' है अतः ब्रह्मा की अपादान संज्ञा होकर उसमें पञ्चमी विभक्ति हुई।

५०. **भुवः प्रभवः १/४/३१।।**

वृत्ति—भवनं भूः। भूकर्तुः प्रभवस्तथा। हिमवतो गंगा प्रभवति। तत्र प्रकाश्ते इत्यर्थः।

अर्थ—'भू' का अर्थ है होना। प्रभवः का अर्थ है प्रथम प्रकाश का स्थान अर्थात् उत्पन्न होने वाले का जो प्रभाव अर्थात् उत्पत्ति का स्थान है उसकी अपादान संज्ञा होती है।

व्याख्या—भुवः अर्थात् भू के कर्त्ता के प्रथम उत्पत्ति या प्रकाश स्थान की अपा-दान संज्ञा होती है। यथा—

हिमवतो गंगा प्रभवति (हिमालय से गंगा निकलती है) यहाँ पर गंगा उत्पत्ति के प्रथम प्रकाश का स्थान हिमालय है अतः उक्त सूत्र से हिमालय की अपादान संज्ञा हुई और उसमें पञ्चमी विभक्ति हुई।

षष्ठी विभक्तिः (सम्बन्ध)

५१. **षष्ठी शेषे २/३/५०।।**

वृत्ति—कारकप्रातिपदिकार्थ व्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादि सम्बन्धः शेषः, तत्र षष्ठी। राज्ञः पुरुषः।

कर्मादिनाम् अपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव।

सतां गतम्। सर्पिषो जानीते। मातुःस्मरति। एधोदकस्योपस्कुरुते। भजे शम्भोश्चरणयोः।

अर्थ—कारक और प्रातिपदिकार्थ से भिन्न स्वस्वामिभाव आदि सम्बन्ध 'शेष' है, उसमें षष्ठी विभक्ति होती है।

व्याख्या—कारक अर्थात् कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण तथा प्रतिपदिकार्थ प्रथमा का वर्णन अष्टाध्यायी के क्रमानुसार पूर्व में वर्णन किया जा चुका है, अतएव उनसे जो बचा हुआ स्व (वस्तु, धन या व्यक्ति) तथा स्वामी आदि का सम्बन्ध है, वह शेष है। उस सम्बन्ध को प्रकट करने के लिए षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है।

षष्ठी विभक्ति प्रायः संज्ञा एवं सर्वनामों के पारस्परिक सम्बन्धों को प्रकट करती है यह सम्बन्ध संस्कृत में कारक नहीं माना जाता है। इसका क्रियापद से कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

राज्ञः पुरुष (राजा का पुरुष) यहाँ पर राजा स्वामी है और पुरुष उसका स्व (भृत्य) है। इन दोनों का सम्बन्ध स्वस्वामिभाव सम्बन्ध होने से 'राज्ञः' में षष्ठी विभक्ति हुई।

जब कर्म आदि कारकों में भी केवल सम्बन्ध मात्र की विवक्षा होती है तो वहाँ भी षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—सतां गतम् (सज्जनों का गमन) यहाँ भाव में गम् धातु से क्त प्रत्यय है अतः सम्बन्ध मात्र की विवक्षा से 'सताम्' में षष्ठी विभक्ति हुई। इसी

प्रकार 'सर्पिषो जानीते' (घृत के उपाय से प्रवृत्त होता है) यहाँ 'सर्पिस्' के प्रवृत्ति में करण होने के कारण तृतीया की अविवक्षा से सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में 'सर्पिष:' में षष्ठी विभक्ति हुई।

मातुः स्मरति (माता का स्मरण करता है) यहाँ सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में 'मातु:' में षष्ठी विभक्ति हुई। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी है।

५२. षष्ठी हेतु प्रयोगे २/३/२६।।

वृत्ति—हेतु शब्द प्रयोगे हेतौ द्योत्ये षष्ठी स्यात्। अन्नस्य होतो वसति।

अर्थ—यदि हेतु शब्द का प्रयोग और कारणता प्रकट करनी हो तो हेतु तथा हेतु बोधक दोनों में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

अन्नस्य हेतोः वसति (अन्न के लिए रहता है) यहाँ रहने का कारण अन्न है, अत: उक्त नियम से 'हेतु' शब्द में और रहने के प्रयोजनभूत 'अन्न' शब्द में षष्ठी विभक्ति हो जाती है।

५३. सर्वनाम्नस्तृतीया च २/३/३१।।

वृत्ति—सर्वनाम्नो हेतुशब्दस्य च प्रयोगे हेतो द्योत्ये तृतीया स्यात् षष्ठी च। केन हेतुना वसति। कस्य हेतो:।

अर्थ एवं व्याख्या—जब सर्वनाम शब्दों के साथ हेतु शब्द का प्रयोग हो तो हेतु प्रकट करने पर सर्वनाम और हेतु शब्द दोनों में तृतीया और षष्ठी होती है। यथा—

केन हेतुना वसति (किसलिए रहता है) यहाँ पर सर्वनाम 'केन' और 'हेतु' इन दोनों में तृतीया विभक्ति होती है और पक्ष में षष्ठी विभक्ति होकर 'कस्य हेतो: वसति' भी बनता है।

५४. दूरान्तिकार्थैः षष्ठयन्तरस्याम् २/३/३४।।

वृत्ति—एतैर्योगे षष्ठी स्यात् पञ्चमी च। दूरं निकटं ग्रामस्य, ग्रामात् वा।

अर्थ एवं व्याख्या—दूर और अन्तिक (समीप) अर्थ वाले शब्दों के योग में षष्ठी तथा पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—

दूरं निकटं ग्रामस्य ग्रामाद् वा (गाँव से दूर अथवा गाँव के पास) यहाँ पर दूर अथवा अन्तिक अर्थवाची निकटम् के योग में षष्ठी तथा पञ्चमी विभक्ति हुई।

इस प्रकार विश्वविद्यालय: ग्रामस्य ग्रामाद् वा दूरम् (विश्वविद्यालय गाँव से दूर है)।

कर्णपुरं प्रयागस्य प्रयागाद् वा समीपमस्ति (कानपुर प्रयाग के समीप है)।

५५. कर्तृकर्मणो कृति

वृत्ति—कृद् योगे कर्तरि कर्मणि च षष्ठी स्यात्। कृष्णस्य कृति:। जगत: कर्त्ता-कृष्ण:।

अर्थ एवं व्याख्या—कृत अर्थात् कृदन्त के योग में कर्त्ता तथा कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

कृष्णस्य कृतिः (कृष्ण की रचना) यहाँ करना क्रिया का ज्ञापक 'कृति' शब्द है, जो 'कृ' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय से बना है, इसका 'कर्त्ता' कृष्ण है इसलिए कृदन्त 'कृति' शब्द के योग से कर्त्ता कृष्ण में षष्ठी होकर 'कृष्णस्य' हुआ। इसी प्रकार—

जगतः कर्त्ता कृष्णः (कृष्ण जगत का कर्त्ता है) यहाँ 'कृ' धातु से 'तृच्' प्रत्यय होकर 'कर्ता' बना। इस कृदन्त के योग में 'जगतः' इस कर्म में षष्ठी विभक्ति हुई।

सप्तमी विभक्तिः (अधिकरण)

५६. आधारोऽधिकरणम् १/४/४५।।

वृत्ति—कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरण संज्ञः स्यात्।

अर्थ—कर्त्ता और कर्म के द्वारा उनमें स्थित क्रिया के आधार की अधिकरण संज्ञा होती है।

व्याख्या—अधिकरण क्रिया का साक्षात् आधार नहीं होता है परन्तु वह कर्त्ता और कर्म के द्वारा तन्निष्ठ क्रिया द्वारा आधार बनता है। और आधार की इस सूत्र से अधिकरण संज्ञा होती है।

५७. सप्तम्यधिकरणे च २/३/३६।।

वृत्ति—अधिकरणे सप्तमी स्यात्। चकाराद् दूरान्तिकार्थेभ्यः।

औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा।

कटे आस्ते। स्थाल्यां पचति। मोक्षे इच्छास्ति। सर्वस्मिन्आत्मास्ति। वनस्य दूरे अन्तिके वा।

अर्थ—अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है तथा दूर और समीप वाचक शब्दों में सप्तमी विभक्ति होती है।

व्याख्या—उपर्युक्त सूत्र के द्वारा त्रिविध आधारों की अधिकरण संज्ञा होती है और अधिकरण में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है।

आधार के तीन भेद निम्नवत् हैं—

१. औपश्लेषिक आधार। २. वैषयिक आधार। ३. अभिव्यापक आधार।

१. **औपश्लेषिक आधार**—जहाँ पर कर्ता और कर्म आधार में संयोग आदि सम्बन्ध से रहते हैं वहाँ पर औपश्लेषिक आधार होता है; यथा—

कटे आस्ते (चटाई पर बैठता है) यहाँ बैठने वाले कर्त्ता का आधार 'कट' के साथ संयोग सम्बन्ध है, अतः कट औपश्लेषिक आधार है इसलिए इसकी अधिकरण संज्ञा होती है। इसी प्रकार 'स्थाल्यां पचति' में भी जानना चाहिए।

२. **वैषयिक आधार**—विषयता सम्बन्ध से होने वाला आधार वैषयिक आधार कहलाता है। इस आधार के साथ कर्त्ता का बौद्धिक सम्बन्ध रहता है।

यथा—मोक्षे इच्छास्ति (मोक्ष में इच्छा है) यहाँ कर्त्ता को मोक्ष की इच्छा है। मोक्ष इच्छा का विषय है। इसी प्रकार शास्त्रे रुचिः, नारायणे भक्तिः। आदि वैषयिक आधार है, इसलिए इसकी अधिकरण संज्ञा होती है।

३. **अभिव्यापक आधार**—जिसमें कोई वस्तु समस्त अवयवों में व्याप्त सर्वस्मिन् आत्मा अस्ति (सबमें आत्मा है) यहाँ आत्मा सभी में व्यापक है, अर्थात् ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ आत्मा नहीं हो, अतः 'सर्व' अभिव्यापक आधार है इसलिए इसकी अधिकरण संज्ञा होती है और 'सर्वस्मिन्' में सप्तमी विभक्ति होती है। इसी प्रकार तिलेषु तैलम्, दुग्धे घृतम् में भी सप्तमी विभक्ति होगी।

वनस्य दूरे अन्तिके वा दूर और अन्तिक (समीप) अर्थ वाले शब्दों में भी 'सप्तम्यधिकरणे च' सूत्र से सप्तमी विभक्ति होती है।

इस प्रकार दूर और अन्तिम शब्दों में पाँच विभक्तियाँ—द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, षष्ठी तथा सप्तमी।

(वा०) साध्वसाधुप्रयोगे च।

वृत्ति—साधुः कृष्णो मातरि। असाधुर्मातुले।

अर्थ एवं व्याख्या—साधु और असाधु शब्द के प्रयोग में सप्तमी विभक्ति होती है।

साधुः कृष्णो मातरि, असाधुः मातुले—(कृष्ण माता के प्रति अच्छा है और मामा के प्रति बुरा है) यहाँ साधु और असाधु के प्रयोग में मातरि और मातुले में उक्त वार्तिक सूत्र से सप्तमी विभक्ति हुई।

(वा०) निमित्तात्कर्मयोगे।

वृत्ति—निमित्तमिहि फलम्। योगः संयोगसमवायात्मकः। चर्मणि द्विपिनं हन्ति, दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्, केशेषु चमरीं हन्ति, सीम्नि पुष्कलको हतः।

अर्थ—निमित्तात् अर्थात् फलवाचक शब्द में सप्तमी विभक्ति होती है जबकि फलवाचक शब्द का कर्म के साथ संयोग या समवाय सम्बन्ध होता है। यथा—

चर्मणि द्विपिनं हन्ति (चमड़े के लिए व्याघ्र को मारता है) यहाँ पर निमित्त अर्थात् फलवाचक शब्द है चर्म, क्योंकि व्याघ्र को मारने का उद्देश्य चर्म की प्राप्ति करना है। 'हन्ति' क्रिया है और 'द्वीपी' कर्म है। इस कर्मरूप 'द्वीपी' के साथ फलवाचक 'चर्म' का समवाय सम्बन्ध (नित्य सम्बन्ध) है। अतः उक्त वार्तिक सूत्र से चर्मणि में सप्तमी विभक्ति होती है।

दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् (दाँतों के लिए हाथी को मारता है) यहाँ फल वाचक दन्त का कर्मरूप 'कुञ्जर' के साथ समवाय सम्बन्ध है अतः दन्तयोः में सप्तमी विभक्ति हुई।

| केशेषु चमरीं हन्ति (केशों के लिए चमरी नामक मृगविशेष को मारता है) यहाँ पर फलरूप 'केश' का मृगरूप चमरी नामक मृगविशेष के साथ संयोग सम्बन्ध होने से केशेषु में सप्तमी विभक्ति हुई।

सीम्नि पुष्कलको हतः (सीमा (अण्डकोश) के लिए पुष्कलक मृग को मारता है) यहाँ पर भी फलवाचक सीमन् का कर्म रूप पुष्कलक के साथ संयोग सम्बन्ध होने से सीम्नि में सप्तमी विभक्ति हुई।

यहाँ पर व्याघ्र, हाथी, चमरी और पुष्कलक कर्म के साथ उनका चर्म, दाँत, केश और सीमा समवाय सम्बन्ध से विद्यमान है और चर्म आदि की प्राप्ति ही वध-व्यापार का लाभ है, अतः यहाँ चर्म आदि में सप्तमी विभक्ति होती है। यद्यपि 'हेतौ' इस सूत्र के द्वारा यहाँ तृतीया विभक्ति प्राप्त थी किन्तु उक्त वार्तिक सूत्र से उसका निषेध होकर सप्तमी विभक्ति हो जाती है।

५८. यस्य च भावेन भावलक्षणम् २/३/३७।।

वृत्ति—यस्य क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते ततः सप्तमी स्यात्। गोषु दुह्यमानासु गतः।

अर्थ एवं व्याख्या—जिसकी क्रिया के द्वारा दूसरी क्रिया लक्षित होती है उससे सप्तमी विभक्ति होती है।

क्रिया की स्थिति किसी कर्ता कर्म में होती है अतः जिस कर्त्ता या कर्म में स्थित एक प्रसिद्ध क्रिया से दूसरी क्रिया लक्षित होती है, उस कर्त्ता या कर्म में सप्तमी विभक्ति होती है; यथा—

गोषु दुह्यमानासु गतः (गायें दुही जाने पर (वह) गया) यहाँ पर गायों की दोहन रूप क्रिया से अन्य की गमन रूप क्रिया लक्षित होती है, अतः 'गो' शब्द में सप्तमी विभक्ति हुई, और विशेषणानुसार 'दुह्यमानासु' में भी सप्तमी विभक्ति हुई।

५९. यतश्च निर्धारणम् २/३/४१।।

वृत्ति—जातिगुणक्रिया संज्ञाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणं यतस्ततः षष्ठी सप्तम्यौ स्तः। नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः। गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा। गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः। छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः। कवीनां कविषु वा कालिदासः श्रेष्ठः।

अर्थ एवं व्याख्या—जाति, गुण, क्रिया और संज्ञा की विशेषता के कारण जहाँ किसी वस्तु को अपने समुदाय से पृथक् किया जाता है उससे षष्ठी या सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः (मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है) यहाँ मनुष्य समुदाय से जाति विशेषता के कारण ब्राह्मण को पृथक् किया जा रहा है अतः यहाँ पर 'नृणां' और 'नृषु' में षष्ठी व सप्तमी विभक्ति हुई।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

- **बहुविकल्पीय**

१. 'भक्तः गङ्गायां स्नानं करोति'—इस वाक्य के 'गङ्गायां' पद में विभक्ति है—
(अ) तृतीया, (ब) पञ्चमी, (स) सप्तमी, (द) कोई नहीं।

२. 'भक्तियोगो मह्यं रोचते'—इस वाक्य के 'मह्यं' पद में कौन-सी विभक्ति है ?
(अ) द्वितीया, (ब) चतुर्थी, (स) षष्ठी, (द) कोइ नहीं।

३. 'मोहनः अक्ष्णा काणः अस्ति'—इस वाक्य में 'अक्ष्णा' पद में विभक्ति है—
(अ) द्वितीया, (ब) तृतीया, (स) चतुर्थी, (द) पञ्चमी।

४. 'गणेशाय नमः'—इस वाक्य में 'गणेशाय' पद में कौन-सी विभक्ति हैं—
(अ) द्वितीया, (ब) पञ्चमी, (स) सप्तमी, (द) कुछ नहीं।

५. 'सः चौरात् विभेति'— इस वाक्य में 'चौरात्' पद में विभक्ति है ?
(अ) द्वितीया, (ब) पञ्चमी, (स) सप्तमी, (द) कुछ नहीं।

६. 'रघुः याचकेभ्यः सर्व ददौ'—इस वाक्य के 'याचकेभ्यः' पद में कौन-सी विभक्ति है ?
(अ) तृतीया, (ब) चतुर्थी, (स) सप्तमी, (द) कोई नहीं।

७. 'देवदत्तेन ग्रामः गम्यते ?'—इस वाक्य के 'ग्रामः' पद में विभक्ति है—
(अ) प्रथमा, (ब) द्वितीया, (स) सप्तमी, (द) कोई नहीं।

८. 'सः जटाभिस्तापसः प्रतीयते'—इस वाक्य के जटाभिः पद में कौन-सी विभक्ति है ?
(अ) तृतीया, (ब) चतुर्थी, (स) पञ्चमी, (द) कोई नहीं।

९. 'इदम् मया श्रूयते'—इस वाक्य में प्रयुक्त 'इदम्' पद में विभक्ति है--
(अ) प्रथमा, (ब) द्वितीया, (स) तृतीया, (द) चतुर्थी।

१०. 'गुरूः शिष्यं पाठयति'—इस वाक्य के 'शिष्यम्' पद में विभक्ति है—
(अ) कुछ नहीं, (ब) प्रथमा, (स) द्वितीया, (द) चतुर्थी।

११. 'भवन्तमन्तरेण कीदृशः अस्याः रागः ?' इस वाक्य के 'भवन्तम्' पद में कौन-सी विभक्ति है ?
(अ) प्रथमा, (ब) द्वितीया, (स) तृतीया, (द) कुछ नहीं।

१२. 'दशरथेन प्राणाः त्यक्ताः' इस वाक्य के 'प्राणाः' पद में विभक्ति, वचन है—
(अ) प्रथमा बहुवचन, (ब) द्वितीया एकवचन,
(स) तृतीया एकवचन, (द) द्वितीया बहुवचन।

१३. 'सीतायाः रामः प्रियः आसीत्'—इस वाक्य के 'सीतायाः' पद में कौन-सी विभक्ति है ?
(अ) पञ्चमी, (ब) चतुर्थी, (स) षष्ठी, (द) कोई नहीं।

१४. 'लक्ष्मणेन सह सीता अपि गतवती'—इस वाक्य में 'लक्ष्मणेन' पद में कौन-सी विभक्ति है ?

(अ) तृतीया, (ब) चतुर्थी, (स) पञ्चमी, (द) षष्ठी।

१५. 'आर्चायौ वसन्तसेनायै निवेदय' वाक्य में 'वसन्तसेनायै' पद में विभक्ति है—

(अ) प्रथमा, (ब) षष्ठी, (स) चतुर्थी, (द) कोई नहीं।

१६. 'नमस्ते' पद में कौन-सी विभक्ति है ?

(अ) तृतीया, (ब) चतुर्थी, (स) पञ्चमी, (द) कोई नहीं।

१७. 'भूपतिना सह आगच्छत्' में 'भूपतिना' ग कौन-सी विभक्ति है ?

(अ) पञ्चमी, (ब) तृतीया, (स) षष्ठी, (द) द्वितीया।

१८. 'स: कर्णाम्यां बधिरौऽस्ति' इस वाक्य के 'कर्णाभ्यां' पद में विभक्ति एवं वचन है—

(अ) तृतीया द्विवचन, (ब) द्वितीया द्विवचन,

(स) सप्तमी एकवचन, (द) चतुर्थी बहुवचन।

१९. 'नम: शिवाय' इस वाक्य के 'शिवाय:' पद में कौन-सी विभक्ति है ?

(अ) तृतीया, (ब) चतुर्थी, (स) पञ्चमी, (द) षष्ठी।

२०. 'विष्णू क्षीर सागरम् अधिशेते' इस वाक्य के 'क्षीरसागरम्' पद में कौन-सी विभक्ति है ?

(अ) द्वितीया, (ब) तृतीया, (स) चतुर्थी, (द) इनमें से कोई नहीं।

२१. 'महयं मोदकं रोचते' इस वाक्य में 'महयम्' पद में चतुर्थी विभक्ति किस सूत्र से होती है ?

(अ) चतुर्थी सम्प्रदाने, (ब) स्पृहरीप्सित:,

(स) रूच्यर्थानां प्रीयमाण:, (द) क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयर्भानां यं प्रति कोप:।

२२. 'जीवेषु मानवा: श्रेष्ठा:' इस वाक्य के 'जीवेषु' पद में कौन-सी विभक्ति है ?

(अ) तृतीया, (ब) पञ्चमी, (स) चतुर्थी, (द) सप्तमी।

२३. 'सुरेश: शिरसा खलवारोऽस्ति' इस वाक्य के 'शिरासा' पद में विभक्ति है—

(अ) चतुर्थी, (ब) तृतीया, (स) षष्ठी, (द) द्वितीया।

२४. 'क्रोधाद् भवति सम्मोह' इस वाक्य में 'क्रोधाद्' पद में कौन-सी विभक्ति है ?

(अ) द्वितीया, (ब) चतुर्थी, (स) पञ्चमी, (द) इनमें से कोई नहीं।

उत्तरमाला

१. (स), २. (ब), ३. (ब), ४. (ब), ५. (ब), ६. (ब), ७. (अ), ८. (अ), ९. (अ), १०. (स), ११. (ब), १२. (अ), १३. (स), १४. (अ), १५.(स), १६. (ब), १७. (ब), १८. (अ), १९. (ब), २०. (अ), २१. (स), २२. (द), २३. (ब), २४. (स)।

• लघु उत्तरीय

१. हेतु और करण में अन्तर बताइये।
२. उपपद विभक्ति और कारक विभक्ति में अन्तर बताइये।
३. 'प्रातिपादिकार्थलिङ्ग परिमाण वचन मात्रे प्रथमा' सूत्र की व्याख्या कीजिये।
४. 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' की व्याख्या कीजिये।
५. अकथितं च सूत्र की व्याख्या कीजिये।
६. कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे सूत्र की व्याख्या उदाहरण सहित कीजिए।
७. 'हीने' सूत्र की व्याख्या कीजिये।
८. 'अपवर्गे तृतीया' सूत्र की व्याख्या कीजिए।
९. विकार आरोपित होने पर कौन-सी विभक्ति होती है ? सूत्र सहित उल्लेख कीजिये।
१०. हेतौ सूत्र की व्याख्या कीजिये।
११. सम्प्रदान संज्ञा विधायक सूत्र की व्याख्या कीजिये।
१२. चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग किस सूत्र से होता है, उदाहरण सहित समझाइये।
१३. 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूर्यार्थानां यं प्रति कोपः' सूत्र की व्याख्या करते हुए उदाहरण दीजिये।
१४. जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता है उसमें कौन-सी विभक्ति होती है, सूत्र सहित उदाहरण दीजिये।
१५. अपादान संज्ञा विधायक सूत्र की व्याख्या कीजिये।
१६. भीत्रार्थानां सूत्र की व्याख्या कीजिये।
१७. आख्यातोपयोगे सूत्र की व्याख्या कीजिये।
१८. आधार कितने प्रकार के होते हैं स्पष्ट कीजिये।
१९. 'यतश्चनिर्धारणम्' सूत्र की व्याख्या करते हुए उदाहरण दीजिये।
२०. 'निमित्तात्कर्मयोगे' सूत्र की व्याख्या करते हुए उदाहरण भी दीजिये।

• दीर्घ उत्तरीय

१. 'प्रातिपदिकार्थलिङ्ग परिमाणवचनमात्रे प्रथमा' सूत्र को विस्तार से समझाइये।
२. 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' सूत्र की विस्तृत व्याख्या उदाहरण सहित दीजिए।
३. उक्त कर्म और अनुक्त कर्म में क्या अन्तर है ?
४. 'अकथितं च' सूत्र की विशद् व्याख्या करते हुए, उनके उदाहरणों का भी उल्लेख कीजिये।
५. 'स्वतन्त्रःकर्ता' सूत्र की व्याख्या कीजिये।
६. चतुर्थी विभक्ति विधायकं विधि सूत्र का उल्लेख कीजिये।
७. 'षष्ठी शेषे' सूत्र की व्याख्या कीजिये।
८. आधारोऽधिकरणम् सूत्र की व्याख्या करते हुए उदाहरण दीजिये।

✤

अथ स्त्रीप्रत्यय-प्रकरणम्

लिङ्ग का निर्धारण तो लिङ्गानुशासन प्रकरण में हो जाता है किन्तु स्त्रीलिङ्ग के बोधन के लिए कौन से प्रत्यय का प्रयोग किया जाये, इसका वर्णन इस प्रकरण में किया जा रहा है। कुछ ऐसे शब्द भी होते हैं जो पुल्लिङ्ग में तो नहीं होते किन्तु स्त्रीलिङ्ग में होते हैं और कुछ ऐसे शब्द भी होते हैं जो पुलिङ्ग में होते हैं; जैसे—छात्र, नर, मनुष्य। इन पुल्लिङ्ग शब्दों का स्त्रीलिङ्ग बोधक प्रत्यय होकर छात्रा, नारी, मानुषी आदि शब्द बनते हैं। इन शब्दों के लिए व्याकरणशास्त्र में कुछ प्रकृति-विशेष से कुछ प्रत्ययों का विधान है। ये प्रत्यय स्त्रियाम् इस सूत्र के अधिकार में आते हैं। प्रत्यय: और परश्च का पूरा अधिकार है। ङ्याप्प्रातिपदिकात् से प्रातिपदिकात् का भी अधिकार है। स्त्रियाम् के अधिकार में आने वाले प्रत्यय हैं—टाप्, डाप्, चाप्, ङीप्, ङीष्, ङीन् ऊङ् और ति। इनमें से टाप्, चाप् और डाप् इन तीनों को आप शब्द से ग्रहण किया जाता है और ङीप्, ङीष् और ङीन् को ङी-शब्द से ग्रहण किया जाता है। 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तंहल्' इस सूत्र से 'आप्' और 'ङी' इन प्रत्ययों के अन्त में होने पर तदन्त शब्दों से परे सु आदि का लोप किया जाता है।

१. स्त्रियाम् ४।३।३।।

वृत्ति—अधिकारोऽयम्, समर्थानामिति यावत्।

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है जो 'समर्थानां प्रथमाद् वा' ४।१।८२ सूत्र तक है अर्थात् उससे पूर्व के सूत्रों में 'स्त्रियाम्' यह पद उपस्थित होता है, अत: वे सूत्र स्त्रीत्व-बोधन के लिए प्रत्ययों का विधान करते हैं।

२. अजाद्यतष्टाप् ४।१।४।।

वृत्ति—अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं स्त्रीत्वंयत् तत्र द्योत्वे टाप् स्यात्। अजा। एडका।अश्वा।चटका।मूषिका।बाला।वत्सा।होडा।मन्दा।विलाता। इत्यादि।मेघा।गङ्गा।सर्वा।

अर्थ—अज आदि गण में पढ़े गये शब्द अथवा ह्रस्व अकारान्त शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'टाप्' प्रत्यय होता है।

अजादि गण में अजा, एडका आदि अनेक शब्द आते हैं। टाप् प्रत्यय में 'चुटू' से टकार की और 'हलन्त्यम्' से पकार की इत्संज्ञा हो जाती है 'आ' शेष बचता है। तत्पश्चात् अक: सवर्णे दीर्घ: से सवर्ण दीर्घ हो जाता है।

अजा—(बकरी) यहाँ अजादिगण का प्रथम शब्द 'अज' से स्त्रीत्व के द्योतन करने में अजाद्यतष्टाप् से 'टाप्' प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध लोप होकर अज + आ बना। टाप्

के आकार के साथ 'अज' के अन्त्य अकार का सवर्ण दीर्घ हुआ और 'अजा' शब्द बना। फिर आबन्त से 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' से सु विभक्ति करके हलङ्याब्भ्योदीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् सूत्र से सकार का लोप होकर 'अजा' रूप सिद्ध होता है।

एडका (मादा भेड़) अजादिगणीय एडक शब्द से स्त्रीत्व का द्योतन करने में अजाद्यतष्टाप् से 'टाप्' प्रत्यय हुआ एडक + टाप् इस स्थिति में अनुबन्ध लोप होकर एडक + आ बचा। फिर सवर्णदीर्घ होकर एडका शब्द बना। अब आबन्त से सु विभक्ति करके रमावत् एडका, एडके, एडकाः आदि रूप सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार अश्व से अश्वा (घोड़ी) बाल से बाला (बालिका) वत्स से वत्सा (बछिया) चटक से चटका (चिड़िया) मूषक से मूषिका (चुहिया) होड से होडा (कन्या) मन्द से मन्दा (कन्या) विलात से विलाता (कन्या) गङ्ग से गङ्गा (नदी विशेष) से सभी उदाहरण अजादिगण में पठित शब्दों के हैं।

विशेष नियम—टाप् प्रत्यय का प्रयोग जिस शब्द से किया गया हो, यदि उसमें प्रत्यय जोड़ने से पहले अर्थात् शब्द के अन्त में 'क' का प्रयोग हुआ हो और 'क' से पहले 'अ' आया हो तो उस 'अ' के स्थान पर 'इ' हो जाता है। किन्तु यह नियम तभी लागू होगा जब 'क' किसी प्रत्यय का हो और 'टाप्' से पहले 'सुप्' प्रत्ययों में से किसी का प्रयोग न हुआ हो। यथा—

मूषक + टाप् = मू + ष् + अ + क् + अ + ट् + आ + प्
= मू + ष् + इ + क + अ + आ = आ (दीर्घ) = मूषिका

स्पष्टीकरण—प्रस्तुत उदाहरण में मूषक शब्द अकारान्त होने से स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए 'अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से टाप् प्रत्यय होकर बना मूषक + टाप्। टाप् में ट् और प् की इत्संज्ञा होकर लोप हुआ और 'आ' शेष बचा। मूषक + आ इस स्थिति में मूषक' के अन्त में स्थित 'क' सुप् प्रत्यय से भिन्न है (मुष् + ण्वुल् वु को अक आदेश = मूषक) तथा 'क' से पहले 'ष' में स्थित 'अ' होने से अकार का इत्व (इ) होकर मूषिक + आ बना। पुनः **अकः सवर्णे दीर्घः** सूत्र से सवर्ण दीर्घ होकर मूषिका बना।

इसी प्रकार—

कारक (कृ + ण्वुल्) + टाप् = कारिक + आ = कारिका
सर्वक (सर्व + ण्वुल्) + टाप् = सर्विक + आ = सर्विका
मामक (माम + ण्वुल्) + टाप् = मामिक + आ = मामिका आदि।

३. उगितश्च ४।१।६।।

वृत्ति—उगिदन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् स्यात्।

भवती। भवन्ती। पचन्ती। दीव्यन्ती।

अर्थ—जिसमें 'उक्' अर्थात् उ, ऋ, लृ की इत्संज्ञा हो गई हो ऐसे प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है।

उगित् अर्थात् उक्–उ, ऋ, लृ जिसके इत् संज्ञक हों, ऐसे प्रत्यय जिस प्रातिपदिक के अन्त में हों, उससे स्त्रीत्व-बोधन के लिए ङीप् प्रत्यय होता है। ङीप् प्रत्यय में

लशक्वतद्धिते से ङकार की इत्संज्ञा तथा हलन्त्यम् से पकार की इत्संज्ञा होकर तस्यलोप: से दोनों इत्संज्ञक वर्णों का लोप होकर 'ई' शेष बचता है। शतृ, वसु, डवतु आदि प्रत्ययों में ऋकार, उकार आदि इत्संज्ञक होने से उगित् है। इस ङीप् प्रत्यय करने से शब्द ङ्यन्त हो जाता है, जिससे सुलोप आदि कार्य होते हैं। ईयसुन् प्रत्ययान्त शब्दों से भी ङीप् प्रत्यय होता है।

भवती—(आप-स्त्री, महिला) भवत् शब्द से पुल्लिङ्ग में भवान् बनता है। 'भा' धातु से 'डवतु' प्रत्यय होकर 'भवत्' बनता है। उकार की इत्संज्ञा होने से उगित् हुआ। इसलिए 'उगितश्च' सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय होकर भवत् + ङीप हुआ। ङीप् के ङकार और पकार की इत्संज्ञा होकर भवत् + ई बना। ङ्यन्त 'भवती' से सु आदि विभक्ति लगाकर नदी के समान रूप बनते हैं।

भवन्ती—(होती हुई) 'भू' धातु से शतृप्रत्यय करके अनुबन्ध लोप होकर भवत् बना। ऋकार की इत्संज्ञा होने से उगित् हुआ। स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में उगितश्च सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर भवत् + ङीप बना। अनुबन्ध लोप होकर भवत् + ई हुआ। इस स्थिति में शप्यश्यनोर्नित्यम् सूत्र से 'नुम्' का आगम होकर भव + नुम् + ती हुआ। इसके बाद अनुबन्ध लोप हुआ और सु आदि कार्य होकर 'भवन्ती' रूप सिद्ध होता है।

इसी प्रकार शतृ प्रत्ययान्त पचत् और दीव्यत् शब्दों से पचन्ती (पकाती हुई) और दीव्यन्ती (खेलती हुई) रूप सिद्ध होते हैं।

४. टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरप: १।४।४५।।

वृत्ति—अनुपसर्जनं यट्टिदादि तदन्तं यददन्तं प्रातिपदिकं तत: स्त्रियां ङीप् स्यात्। कुरुचरी। नदट् नदी। देवट् देवी। सौपर्णेयी। ऐन्द्री। औत्सी। ऊरुद्वयसी। ऊरुदघ्नी। ऊरुमात्री। पञ्चतयी। आक्षिकी। लावणिकी। यादृशी। इत्वरी।

अर्थ—अनुपसर्जन (जो गौण न हो) ऐसे टित्, ढ, अण्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ् और क्वरप् जो प्रत्यय, ऐसे प्रत्ययों के अन्त में होने वाले अदन्त प्रातिपदिक, उनसे स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है।

ढ आदि ग्यारह तद्धित प्रत्यय हैं। कृत् प्रत्यय ट और टक्, टित् है, और देवट् और नदट् आदि शब्द भी टित् है।

ये प्रत्यय कृत्प्रकरण और तद्धित प्रकरण के हैं। ङीप् प्रत्यय में लशक्वतद्धिते से ङकार की इत्संज्ञा तथा हलन्त्यम् से पकार की इत्संज्ञा होकर तस्यलोप: से दोनों इत्संज्ञक वर्णों का लोप हो जाता है और ईकार शेष बचता है। ईकार के परे होने पर प्रकृति की भसंज्ञा होती है। अत: प्रकृति में विद्यमान अन्त्य अवर्ण का यस्येति च सूत्र से लोप हो जाता है।

कुरुचरी—(कुरुदेश में विचरण करने वाली स्त्री) कुरुषु चरति इस विग्रह में कुरु उपपद पूर्वक चर् धातु से चरेष्ट: सूत्र से ट् प्रत्यय हो कर कुरुचर शब्द बनता है। कृदन्त होने के कारण यह प्रातिपदिक भी है अत: इससे टित् मानकर स्त्रीत्व की विवक्षा में

टिड्ढाणञ०...........सूत्र से ङीप् प्रत्यय हुआ। ङकार और पकार की इत्संज्ञा होकर कुरुचर + ई बना। कुरुचर की भसंज्ञा करके अन्त्य आकार का लोप होकर कुरुचर + ई बना। सु प्रत्यय करके, उसका लोप होकर कुरुचरी सिद्ध होता है।

नदी–(दरिया) पचादिगण में 'नदट्' शब्द से अच् प्रत्यय होकर 'नद्' शब्द बनता है। कृदन्त होने से प्रातिपदिक भी है। अतः इससे टित् मानकर के स्त्रीत्व की विवक्षा में 'नद' शब्द से टिड्ढाणञ्द्वयसज्दहनञ्०...........सूत्र से ङीप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर नद + ई बना। इस स्थिति में 'नद' की भसंज्ञा, अन्त्य अकार का लोप होकर नदी बना। अब सु प्रत्यय, उसका हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् से लोप करके तथा वर्णसम्मेलन करके नदी सिद्ध होता है।

देवी–'देवट्' शब्द से टिदन्त मानकर अजन्तं 'देव' से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'ङीप्' प्रत्यय होकर 'नदी' के समान ही 'देवी' रूप बनता है।

सौपर्णेयी–(सुपर्णी की कन्या, गरुड़ की बहन) यहाँ सुपर्णी, शब्द से अपत्य अर्थ में स्त्रीभ्यो ढक् से 'ढक्' प्रत्यय होकर, ढ को एय आदेश होकर 'सौपर्णेय' बनता है। अतः इससे ढान्त मानकर के स्त्रीत्व की विवक्षा में ढिड्ढाणञ्द्वयसज्दहनञ्०.........से ङीप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर सौपर्णेय + ई बना। अब 'सौपर्णेय की भसंज्ञा करके अन्त्य अकार का 'यस्येति च' से लोप हुआ और सौपर्णेय् + ई बना। सु प्रत्यय, हलङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् से लोप करने पर सौपर्णेयी सिद्ध होता है।

ऐन्द्री–(इन्द्रो देवता अस्याः–इन्द्र देवता है जिसका, ऐसी पूर्वदिशा) यहाँ पर इन्द्र शब्द से साऽस्य देवता अथवा तस्येदम् से अण् प्रत्यय होकर ऐन्द्र बना। तद्धित होने से प्रातिपदिक भी है। अतः अवणन्त मानकर स्त्रीत्व की विवक्षा में 'ऐन्द्र' शब्द से टिड्ढाणञ्०...........सूत्र से ङीप् प्रत्यय हुआ, अनुबन्ध लोप ऐन्द्र + ई बना। ऐन्द्र की भसंज्ञा करके अन्त्य अकार का लोप यस्येति च से होकर ऐन्द्र् + ई बना। वर्णसम्मेलन करके ऐन्द्री बना। इसके पश्चात् सु प्रत्यय, हलङ्याब्भ्यो०..........से लोप करने पर 'ऐन्द्री' सिद्ध होता है।

औत्सी–(उत्सस्येयम्–झरने में उत्पन्न होने वाली मछली आदि) यहाँ 'उत्सव' शब्द से उत्सादिभ्योऽञ् से अञ प्रत्यय होकर औत्स बना। तद्धितान्त होने से प्रातिपदिक भी है। अतः इसे अञन्त मानकर स्त्रीत्व की विवक्षा में टिड्ढाणञ०...........सूत्र से 'ङीप्'प्रत्यय हुआ, अनुबन्ध लोप होकर औत्स + ई बना। 'औत्स' की भसंज्ञा, अन्त्य आकार का 'यस्येति च' से लोप, वर्णसम्मेलन करके औत्सी बना। अब 'सु' प्रत्यय, उसका हलङ्याब्भ्यो०...........से लोप होकर औत्सी सिद्ध होता है।

ऊरुद्वयसी–(उरु प्रमाणमस्याः–उरु प्रमाण है जिसका ऐसी नदी, तलैया, छोटा तालाब आदि। यहाँ 'ऊरु' शब्द से 'प्रमाण' अर्थ में प्रनाणे द्वयसज्-दहनञ्-मात्रचः से 'द्वयसज्' प्रत्यय होकर ऊरुद्वयस्य बना। तद्धितान्त होने के कारण प्रातिपदिक भी है। अतः इसे 'द्वयसजन्त' मानकर स्त्रीत्व की विवक्षा में टिड्ढाणञ्०...........सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध लोप होकर ऊरुद्वयस + ई बना। अब 'ऊरुद्वयस' की

भसंज्ञा होकर 'यस्येति च' से अन्त्य अकार का लोप, वर्ण सम्मेलन करके ऊरुद्वयसी बना। सु प्रत्यय, हलङ्याब्भ्यो०...........से लोप होकर ऊरुद्वयसी सिद्ध होता है। इसी प्रकार उक्त सूत्र से 'दहनञ्' और मात्रच् प्रत्यय करके क्रमशः-ऊरुदहनी और ऊरुमात्री शब्द बनते हैं।

पञ्चतयी–(पञ्च अवयवा अस्याः–पाँच अवयव वाली स्त्री) यहाँ पञ्चन् शब्द से अवयव अर्थ में संख्याया अवयवे तयप् से 'तयप्' प्रत्यय होकर पञ्चतय बना। तयप् प्रत्ययान्त होने से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'पञ्चतय' से टिड्ढाणञ्०...........सूत्र से ङीप् प्रत्यय हुआ, अनुबन्ध लोप होकर पञ्चतय + ई बना। अब पञ्चतय की भसंज्ञा करके 'यस्येति च' से अन्त्य अकार का लोप, वर्ण सम्मेलन करके पञ्चतयी बना। अब 'सु' प्रत्यय करके, उसका हलङ्याब्भ्यो०..........से लोप करने पर पञ्चतयी सिद्ध होता है।

आक्षिकी–(अक्षैर्दीव्यतीति–पाँसों से खेलने वाली) यहाँ 'अक्ष' शब्द से 'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' से 'ठक्' प्रत्यय ठस्येकः से ठकार का 'इक' आदेश होकर 'आक्षिक' बना। ठक् प्रत्ययान्त 'आक्षिक' से टिड्ढाणञ०..........सूत्र से ङीप् प्रत्यय हुआ। आक्षिक + ङीप् इस स्थिति में अनुबन्ध लोप, यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप होकर आक्षिक + ई बना। अब 'सु' प्रत्यय और हलङ्याब्भ्यो०...........से सु का लोप होकर 'आक्षिकी' सिद्ध होता है।

प्रास्थिकी (प्रस्थेन क्रीता–एक प्रस्थ से खरीदी हुई) यहाँ 'प्रस्थ' शब्द से 'क्रीत' अर्थ में तेन क्रीतम् से ठञ् प्रत्यय, ठकार का 'इक' आदेश होकर प्रास्थिक शब्द बना। अब 'प्रास्थिक' शब्द से टिड्ढाणञ्० सू से 'ङीप्' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप होकर प्रास्थिकी बना। अब 'सु' प्रत्यय, हलङ्याब्भ्यो०.........
..से सु का लोप होकर प्रास्थिकी सिद्ध होता है।

लावणिकी–लवणं पण्यमस्याः–नमक बेचने वाली) यहाँ लवण शब्द से तदस्य पण्यम् (यह इसका विक्रेय या सौदा है) इस अर्थ में लवणात् ठञ् से 'ठञ्' प्रत्यय, ठकार का 'इक' आदेश होकर लावणिक शब्द बनता है। लावणिक शब्द से टिड्ढाणञ्०......
......सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप 'यस्येत च' से अन्त्य अकार का लोप होकर लावणिकी। बना। अब 'सु' प्रत्यय, हल्ङ्याब्भ्यो०..........से लोप होकर लावणिकी सिद्ध होता है।

यादृशी–(जैसी) यहाँ 'यत्' उपपद पूर्वक 'दृश्', धातु से 'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च' से कञ् प्रत्यय हुआ। आ सर्वनाम्नः से 'यत्' शब्द को आकार अन्तादेश और सवर्ण दीर्घ होकर यादृश बना। अब कञन्त यादृश शब्द से टिड्ढाणञ०...........सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप होकर यादृशी बना। इसके बाद सु प्रत्यय, हल्ङ्याब्भ्यो०...........से लोप होकर यादृशी सिद्ध होता है।

इत्वरी–(व्यभिचारिणी) यहाँ 'इण् गतौ' धातु से इण्नशिजिसर्तिभ्यः क्वरप् से 'क्वरप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् से तुक् का आगम होकर 'इत्वर' बना। इत्वर शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में टिड्ढाणञ्०...........सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय,

अनुबन्ध लोप, यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप, वर्ण सम्मेलन करके इत्वरी बना। अब 'सु' प्रत्यय, हल्ङ्याब्भ्यो०............से लोप होकर इत्वरी सिद्ध होता है।

(वा०) नञ्स्नञीइकक्ख्युँस्तरुणतलुनानामुपसङ्ख्यानम्।

स्त्रैणी। पौंस्नी। शाक्तीकी। याष्टीकी। आढ्यंकरणी। तरुणी। तलुनी।

अर्थ—यह वार्तिक सूत्र है। नञ् प्रत्ययान्त, स्नञ् प्रत्ययान्त, ईकक् प्रत्ययान्त और ख्युन प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से तथा तरुण, तलुन प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है।

नञ्, स्नञ् और ईकक् ये तद्धित प्रत्यय है और ख्युन् कृत प्रत्यय है।

स्त्रैणी, पौंस्नी—(स्त्री सम्बन्धी, पुरुष सम्बन्धी) यहाँ पर स्त्री और पुरुष शब्दों से 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्-स्नञौ भवनात्' से क्रमशः नञ् और स्नञ् प्रत्यय होकर 'स्त्रैण' और 'पौस्न' शब्द बनते हैं। अब 'स्त्रैण' और 'पौस्न' शब्दों से 'नञ्स्नञीकक्ख्युँस्तरुण-तलुनानामुपसङ्ख्यानम्' इस वर्तिक सूत्र से ङीप् प्रत्यय हुआ। अब यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप होकर स्त्रैणी और पौस्नी बनते हैं। इसके बाद 'सु' प्रत्यय और हल्ङ्याब्भ्यो०........... से लोप होकर स्त्रैणी और पौस्नी सिद्ध होते हैं।

शाक्तीकी—(शक्तिः आयुधविशेषः प्रहरणम् अस्याः—शक्ति नामक अस्त्र जिसका हथियार है, वह स्त्री) यहाँ पर शक्ति शब्द से शक्तियष्टयोरीकक् से ईकक् प्रत्यय, आदिवृद्धि और यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप होकर शाक्तीक शब्द बनता है। अब शाक्तीक शब्द से नञ्स्नञीकक्ख्यूँस्तरुणतलुनानामुपसङ्ख्यानम् इस वार्तिक सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय, यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप। सु प्रत्यय, प्रत्यय का लोप होकर 'शाक्तीकी' रूप सिद्ध होता है।

आढ्यङ्करणी (अनाढ्यः आढ्यः क्रियतेऽनया—जो अनाढ्य को धनवान् बनाये) यहाँ 'अनाढ्य' पद के उपपद रहते 'कृत' धातु से ख्युन प्रत्यय होकर 'आढ्यङ्करण' शब्द बनता है। अब 'आढ्यङ्करण' शब्द से प्रकृत वार्तिक सूत्र से ङीप प्रत्यय, लोपादि कार्य होकर आढ्यङ्ककरण + ई बना। यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप, सु प्रत्यय, प्रत्यय का लोप होकर आढ्यङ्करणी रूप सिद्ध होता है।

तरुणी, तलुनी (युवती) यहाँ 'तरुण' और 'तलुन' शब्दों से प्रकृत वार्तिक सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, 'भ' संज्ञा होकर 'यस्येति च' से अन्त्य अकार का लोप,, सु प्रत्यय और प्रत्यय का लोप होकर तरुणी और तलुनी ये रूप सिद्ध होते हैं।

५. यञश्च ४।१।१६।।

वृत्ति—यञन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप्स्यात्। अकार लोपे कृते।

अर्थ एवं व्याख्या—यञन्त से स्त्रीलिंग में ङीप् प्रत्यय हो। अर्थात् स्त्रीत्व की विवक्षा में यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से परे ङीप् प्रत्यय होता है।

अकारेति—ङीप् प्रत्यय होने पर यञन्त के अन्त्य अकार का यस्येति च से लोप होता है।

६. हलस्तद्धितस्य ६।४।१५०।।

वृत्ति—हलः परस्य तद्धितयकारस्योपधाभूतस्य लोप ईति परे। गार्गी।

अर्थ एवं व्याख्या—हल् से परे तद्धित के उपधाभूत यकार का लोप होता है, ईकार के परे होने पर। यथा—

गार्गी—(गार्ग्य स्त्री, गर्ग गोत्र की सन्तति, कन्या) गर्गस्य गोत्रापत्यं स्त्री।। तद्धित में 'गर्ग' शब्द से गर्गादिभ्यो यञ् से 'यञ्' प्रत्यय होकर गार्ग्य बना। यञन्त 'गार्ग्य' शब्द से यञश्च से ङीप् प्रत्यय, और अनुबन्ध लोप होकर गार्ग्य + ई बना। अब 'भ' संज्ञा, यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप गार्ग्य् + ई बना। हलस्तद्धितस्य से गार्ग्य् के यकार का लोप हुआ-गार्ग् + ई बना। स्वादि कार्य करके गार्गी रूप सिद्ध होता है।

७. प्राचांष्फ तद्धितः ४।१।१७।।

वृत्ति—यञन्तात् ष्फो वा स्यात्, स च तद्धितः।

अर्थ एवं व्याख्या—यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व विवक्षा में विकल्प से तद्धित संज्ञक ष्फ प्रत्यय होता है।

ष्फ प्रत्यय की तद्धित संज्ञा करने का फल प्रातिपदिक संज्ञा है। तद्धितान्त होने के कारण 'ष्फ' प्रत्ययान्त गार्ग्यायण शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में अग्रिम सूत्र से ङीप् प्रत्यय होता है।

ष्फ प्रत्यय में षः प्रत्ययस्य सूत्र से आदि षकार की इत्संज्ञा हो जाती है फकार शेष बचता है। उसमें से केवल फ् के स्थान पर आयनेयीनीयियः फढखछघ्नां प्रत्ययादीनाम् से आयन् आदेश होकर आयन बनता है।

७. षिद्गौरादिभ्यश्च ४।१।४१।।

वृत्ति—षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च ङीष् स्यात् गार्ग्यायणी। नर्तकी। गौरी (वा) आम् 'अनडुहः' स्त्रियां वा। अनड्वाही, अनडुही। आकृति गणोऽयम्।

अर्थ एवं व्याख्या—षित् अर्थात् जिस शब्द में षकार इत्संज्ञक हो ऐसे शब्दों से और गौर आदि गण में पठित शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'ङीष्' प्रत्यय होता है।

गौरादिगण में गौर, मत्स्य, मनुष्य, हय, हरिण, आमलक, वदर, भृङ्ग आदि अनेक शब्द पठित हैं फिर भी यह 'आकृतिगण' हैं। तात्पर्य यह है कि इस गण में आने वाले शब्द असंख्य हैं जिसकी गणना नहीं हो सकती। अतः आकृतिगण हैं।

ङीष् प्रत्यय में ङकार लशक्वतद्धिते से और षकार की हलन्त्यम् से इत्संज्ञा होकर 'तस्यलोपः' से लोप हो जाता है। ईकार शेष बचता है।

गार्ग्यायणी—(गर्गस्यापत्यं स्त्री—गर्ग की अपत्य स्त्री) यहाँ यञन्त गार्ग्य शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्राचां ष्फ तद्धितः से ष्फ प्रत्यय हुआ। षः प्रत्ययस्य से षकार का लोप होकर 'फ' बचा। अब फकार के स्थान पर आयन् आदेश होकर गार्ग्य + आयन बना। भसंज्ञक अकार का लोप रषाभ्यां नो णः समानपदे से नकार का णकार होकर गार्ग्यायण बना। अब गार्ग्यायण शब्द से षित् होने के कारण षिद्गौरादिभ्यश्चय से

'ङीष्' प्रत्यय हुआ अनुबन्ध लोप होकर गार्ग्यायर्ण + ई बना। यस्येति च से भसंज्ञक अकार का लोप होकर गार्ग्यायण् + ई बना। अब ङ्याप्प्रातिपदिकात् से सु आदि विभक्ति लगाकर तथा हल्ङ्याब्भ्योदीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् से लोप होकर गार्ग्यायणी सिद्ध होता है।

नर्तकी—(नाचने वाली स्त्री) यहाँ 'नृत्' धातु से शिल्पिनि ष्वुन् से ष्वुन् से ष्वुन् प्रत्यय हुआ। ष् और न् की इत्संज्ञा और लोप, वु शेष बचा। वु को अक आदेश होकर नृत् + अक बना। अब धातु के ऋकार को अर् गुणा देश होकर नर्तक बना। अब षित् होने के कारण नर्तक शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में षिद्गौरादिभ्यश्च से 'ङीष्' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर नर्तक + ई बना। यस्येति च से भसंज्ञक अकार का लोप, ङ्यन्त 'नर्तकी' से सु आदि विभक्ति लगाकर 'नर्तकी' रूप सिद्ध होता है।

गौरी—(गौर वर्ण की स्त्री) यहाँ गौरादि गण के आदि शब्द 'गौर' से षिद्गौरादिभ्यश्च से ङीष् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर गौर + ई बना। यस्येति च से भसंज्ञक अकार का लोप होकर गौर् + ई = गौरी बना। ङ्यन्त गौरी से स्वादि कार्य होकर 'गौरी' रूप बनता है।

(वा०) आम् अनडुह इति—स्त्रीलिङ्ग में 'अनडुह' शब्द को 'आम्' विकल्प से हो।

अनड्वाही, अनडुही—(गाय) 'अनडुह' शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में गौरादिगण में पठित होने से षिद्गौरादिभ्यश्च से ङीष् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, अनडुह + ई बना। 'यस्येति च' से अन्त्य अकार का लोप होकर 'अनुडुह् + ई, वर्ण सम्मेलन कर अनडुही बना। आमनडुहः स्त्रियां वा इस वार्तिक से विकल्प से 'आम्' आगम, अनुवन्ध लोप होकर अनडु + आह् + ई बना यण् और वर्णसम्मेलन होकर अनड्वाही बना। अब ङ्यन्त अनड्वाही से स्वादि कार्य होकर अनड्वाही सिद्ध होता है। 'आम्' विकल्प से होता है, न होने पर 'अनडुही' बनता है।

गौरादिगण—गौर, मत्स्य, मनुष्य, शृङ्ग, पिंगल, हय, गवय, मुकय, ऋष्य पुट, तूण, द्रुण, दौण, हरिण, काकण, पटर, उणक, आमल, आमलक, कुबल, बिम्ब, बदर, कर्कर, तर्कार, शर्कार, पुष्कर, शिखण्ड, सलद, शुष्कण्ड, सनन्द, सुषम, अलिन्द, गड्डुल, षाण्डश, आढक, आनन्द, अश्वत्थ आदि गौरादिः। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक शब्द इस गण के अन्तर्गत आते हैं।

९. वयसि प्रथमे ४।१।२०।।

वृत्ति—प्रथमवयोवाचिनोऽदन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात्। कुमारी।

अर्थ एवं व्याख्या—प्रथम अवस्था अर्थात् कौमार अवस्था के वाचक अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है।

अवस्थाएँ तीन है—कौमार, यौवन और वृद्धावस्था। प्रथम अवस्था कौमार है। कौमार अवस्था के वाचक शब्द से प्रकृत सूत्र ङीप् प्रत्यय का विधान करता है।

कुमारी–(अविवाहिता लड़की) यहाँ प्रथम अवस्था के वाचक कुमार शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में वयसि प्रथमे से 'ङीप्' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप होकर कुमार् + ई = कुमारी बना। अब स्वादि करके कुमारी रूप सिद्ध होता है।

इसी प्रकार किशोरी–'किशोर' शब्द भी युवावस्था से पहले की अवस्था का वाचक शब्द है। इससे स्त्रीत्व की विवक्षा से वयसि प्रथमे से ङीप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप होकर किशोर् + ई बना। स्वादि कार्य करके किशोरी रूप बनता है।

इस सूत्र पर रचित वार्ति वयस्यचरमे इस वार्तिक से यौवन अवस्था के वाचक शब्दों से भी उक्त (ङीप्) प्रत्यय होता है। यह वार्तिक कहता है कि अन्तिम अवस्था के वाचक शब्दों से नहीं होता, अन्य दोनों से होता है। अतएव वधूट और चिरण्ट जो यौवन के वाचक हैं–से भी ङीप् होने पर वधूटी और चिरण्टी शब्द बनते हैं।

१०. द्विगोः ४।१।२१।।

वृत्ति–अदन्ताद् द्विगोः ङीप् स्यात्। त्रिलोकी। अजादित्वात् त्रिफला, त्र्यनीका सेना।

अर्थ एवं व्याख्या–अदन्त द्विगुसमास से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है।

जिस समास में संख्यावाचक शब्द पूर्व में हो उसे द्विगु कहते हैं। ऐसे शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है।

त्रिलोकी–(त्रयाणां लोकानां समाहारः। तीनों लोकों का समुदाय) यहाँ संख्यापूर्वो द्विगुः से द्विगु समास होने पर और (वा०) 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः' से उसके स्त्रीत्व का नियम होने से 'त्रिलोक' शब्द से द्विगोः से ङीप् प्रत्यय, यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके त्रिलोकी बना। अब स्वादि कार्य करके त्रिलोकी रूप सिद्ध होता है।

अजादित्वात्-त्रिफला–(त्रयाणां फलानां समाहारः, हरड़, बहेड़ा और आँवला इन तीन फलों का समूह) यहाँ पर भी संख्यापूर्वक होने से द्विगोः से ङीप् प्रत्यय होना चाहिए था किन्तु अजादिगण के अन्तर्गत होने से इसको बाँधकर त्रिफल शब्द से अजाद्यतष्टाप् से टाप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर त्रिफल + आ बना। अब सवर्ण दीर्घ, स्वादि कार्य होकर त्रिफला रूप सिद्ध होता है।

त्र्यनीका–(त्रयाणां अनीकानां समाहारः, तीन प्रकार की सेनाओं का समूह) यहाँ पर भी संख्यापूर्वक होने से 'द्विगोः' से ङीप् होना था किन्तु इस शब्द के अजादिगण में पाठ होने से इसको बाँधकर अजाद्यतष्टाप् से टाप् प्रत्यय होकर 'त्र्यनीका' बनता है।

११. वर्णादनुदात्तान्तोपधातो नः ४।१।३९।।

वृत्ति–वर्णवाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधः तदन्तादनुपसर्जनात्प्रातिपदिकाद्वा ङीप्, तकारस्य नकारादेशश्च। एनी, एता। रोहिणी, रोहिता।

अर्थ एवं व्याख्या—वर्णवाची (वर्ण—लाल, हरा, नीला, पीला आदि रंग वाचक) जो अनुदात्त तकारोपध शब्द, अनुपसर्जन प्रातिपदिक से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीप् प्रत्यय तथा शब्द में विद्यमान तकार के स्थान पर नकार ओदश होता है। तकार का नकार आदेश तभी होता है जब ङीप् प्रत्यय हो, अन्यथा नहीं।

एनी एता—(चितकबरी, अनेक रंगों वाली) यहाँ विविध रंगों का वाचक 'एत' शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में वर्णादनुदात्तात्तोपद्यान्तो नः से 'ङीप्' प्रत्यय और साथ ही तकार को नकार आदेश होकर एन + ङीप् बना। अनुबन्ध लोप, यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप तथा स्वादि कार्य होकर एनी बनता है। ङीप् के अभाव पक्ष में 'एत' शब्द से अजाद्यतष्टाप् से टाप् प्रत्यय होकर 'एता' बनता है।

रोहिणी, रोहिता—(लाल रंग वाली) यहाँ वर्णवाची रोहित शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में वर्णादनुदात्तात्तोपधातो नः से ङीप् प्रत्यय और तकार का नकार आदेश होकर रोहिन + ङीप् बना। अनुबन्ध लोप, यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप होकर तथा रषाभ्यां नो णः समानपदे से नकार को णकार आदेश, स्वादि कार्य होकर रोहिणी बनता है। 'ङीप्' के अभाव पक्ष में रोहित शब्द से अजाद्यतष्टाप् से 'टाप्' से टाप् प्रत्यय, सवर्ण दीर्घ होकर 'रोहिता' बनता है।

१२. वोतो गुणवचनात् ४।१।४४।।

वृत्ति—उदन्ताद् गुणवाचिनो वा ङीष्स्यात्। मृद्वी, मृदुः।

अर्थ एवं व्याख्या—ह्रस्व उकारान्त शब्दों से स्त्रीत्व की वि.क्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है।

मृद्वी, मृदुः—(कोमला) यहाँ ह्रस्व उकारान्त गुणवाचक 'मृदु' शब्द से वोतो गुणवचनात् सूत्र से ङीष् प्रत्यय हुआ। मृदु + ङीष् इस स्थिति में अनुबन्ध लोप, उकार का यण् आदेश होकर मृद्व् + ई बना। अब सु प्रत्यय और लोप होकर मृद्वी बना। ङीष् प्रत्यय के अभाव पक्ष में 'मृदु' में सु प्रत्यय और रुत्वविसर्ग होकर मृदुः सिद्ध होता है।

इसी प्रकार से पट्वी, पटुः (चतुर स्त्री) बनेंगे।

१३. बह्वादिभ्यश्च ४।१।४५।।

वृत्ति—एभ्यो वा ङीष्स्यात्। बहवी, बहुः।

अर्थ एवं व्याख्या—बहु आदि गण में पठित प्रातिपदिक शब्द से स्त्रीत्व की बिक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है।

बहवादि—बहु, पद्धति, अङ्कति, अञ्चति, अंहति, शकटि, शक्ति, शस्त्र, शारि, वारि, राति, राधि इति।

बहवी, बहुः—(बहुत, स्त्रीलिङ्ग) यहाँ ह्रस्व उकारान्त बहु शब्द से बह्वादिभ्यश्च से ङीष् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, बहु + ई में इकोयणचि से यण् व होकर बह् + व् + ई बना। सु प्रत्यय, प्रत्यय का लोप होकर बहवी सिद्ध हुआ। ङीष् प्रत्यय के अभाव पक्ष में बहु में सु प्रत्यय, रुत्व विसर्ग होकर बहुः सिद्ध होता है।

(वा०) कृदिकारादक्तिनः।

रात्री, रात्रिः।

अर्थ एवं व्याख्या—यह वार्तिक सूत्र है। 'क्तिन्' से भिन्न 'कृत्' से सम्बन्धित इकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय होता है।

रात्री, रात्रिः—(रात) यहाँ पर 'रा' धातु से 'रा शादिभ्यत्रिप्' इस उणादिप्रकरण के सूत्र से 'त्रिप्' प्रत्यय होकर 'रात्रि' शब्द बना। यहाँ कृत प्रत्यय त्रिप् का इकार है। अतः कृदिकारादक्तिनः इस वार्तिक से विकल्प से ङीष् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर रात्रि + ई बना। यस्येति च से अन्त्य इकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके रात्री बना। सु प्रत्यय, प्रत्यय का लोप होकर रात्री सिद्ध होता है। ङीष् प्रत्यय के अभाव पक्ष में 'रात्रि' में 'सु' प्रत्यय और रुत्वविसर्ग होकर रात्रिः बनता है।

(वा०) सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके।

शकटी, शकटिः।

अर्थ एवं व्याख्या—यह भी एक वार्तिक सूत्र है। कुछ आचार्य 'क्तिन्' प्रत्ययान्त से भिन्न सभी इदन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है, ऐसा मानते हैं।

शकटी, शकटिः—(छोटी गाड़ी) यहाँ शकटि शब्द ह्रस्व इकारान्त है। शकटि शब्द से सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके सूत्र से विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय अनुबन्ध लोप होकर शकटि + ई बना। यस्येति च से अन्त्य इकार का लोप, सु प्रत्यय, प्रत्यय का लोप होकर शकटि बनता है। ङीष् प्रत्यय के अभाव पक्ष में 'शकटि' में स्वादि कार्य और रुत्वविसर्ग होकर शकटिः बनता है।

१४. पुंयोगादाख्यायाम् ४।१।४८।।

वृत्ति—या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्तते ततो ङीष् स्यात्। गोपस्यस्त्री गोपी। पालकान्तान्न-गोपालिका, अश्वपालिका।

अर्थ एवं व्याख्या—पुरुष के साथ सम्बन्ध के कारण जब पुंवाचक शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त हो तो उस अदन्त शब्द से ङीष् प्रत्यय होता है।

तात्पर्य यह है कि शब्द पुल्लिङ्ग हो, उसका प्रयोग पति-पत्नी-भाव रूप सम्बन्ध के कारण स्त्री के लिए भी किया जाने लगे तो उस समय 'ङीष्' प्रत्यय होता है।

स्त्रीलिङ्ग बनाने में वह पत्नी भी हो सकती है और पुत्री, बहन आदि भी हो सकती है। गोपस्य पत्नी, भगिनी, पुत्री गोपी आदि।

गोपी—(गोपस्य स्त्री) यहाँ 'गोप' शब्द अदन्त पुल्लिङ्ग है। 'गोप' शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में पति-पत्नी-भाव रूप सम्बन्ध से पुंयोगादाख्यायाम् से 'ङीष्' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर गोप + ई बना। यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप, सु प्रत्यय, प्रत्यय का लोप होकर 'गोपी' सिद्ध होता है।

पालकान्तान्न—यह वार्तिक सूत्र है। पालक अन्त में होने वाले शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में पुंयोग होने पर भी ङीष् प्रत्यय नहीं होता है। यह वार्तिक उसका अपवाद है। अतः अजाद्यतष्टाप् से टाप् प्रत्यय होता है।

१५. प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात् इदाप्युसुपः ७।३।४४।।

वृत्ति—प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्याकारस्येकारः स्याद् अपि, स आप् सुपः परो न चेत्। गोपालिका। अश्वपालिका। सर्विका। कारिका। अतः किम् ? नौका प्रत्ययस्थात् किम् ? शक्नोतीति शका। असुपः किम् ? बहुपरिव्राजका नगरी।

अर्थ एवं व्याख्या—प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व में स्थित अकार के स्थान पर इकार आदेश होता है आप् के परे होने पर, यदि यह आप् सुप् से परे हो तो नहीं होता है।

गोपालिका—(गोपालकस्य स्त्री-गाय पालन करने वाले की स्त्री) यहाँ पर गोपालक शब्द पालकान्त है। पुंयोग होने पर भी 'पुंयोगादाख्याम्' से ङीष् प्रत्यय न होकर 'पालकान्तान्न' इस वार्तिक सूत्र से निषेध होकर अजाद्यतष्टाप् से 'टाप्' प्रत्यय होता है। अनुबन्ध लोप होकर गोपालक + आ बना। गोपालक का ककार प्रत्यय वाला ककार है। उससे पूर्व लकारोत्तरवर्ती अकार है। आप भी परे और वह सुप् से भी परे नहीं है। अतः प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः से ल के अकार को इकार आदेश होकर गोपालिक + आ बना। अकः सवर्णे दीर्घः से सवर्ण दीर्घ, सु प्रत्यय, प्रत्यय का लोप होकर गोपालिका रूप सिद्ध होता है।

अश्वपालिका में 'अश्वपालक' शब्द से टाप् प्रत्यय होकर 'गोपालिका' के समान रूप सिद्ध होगा।

सर्विका—यहाँ 'सर्व' शब्द से स्वार्थ में 'अव्यय-सर्वनाम्नाम्-अकच् प्राक् टेः' सूत्र से टि के पूर्व अकच् प्रत्यय होकर सर्वक शब्द बना। सर्वक शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में अदन्त होने से अजाद्यतष्टाप् से टाप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर सर्वक + आ बना। अकः सवर्णे दीर्घः से सवर्ण दीर्घ होकर सर्वका बना। अब यहाँ पर ककार अकच् प्रत्यय का है उससे पूर्व अकार को प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः से इकार आदेश होकर, सु प्रत्यय, सु प्रत्यय का लोप होकर सर्विका रूप सिद्ध होता है।

कारिका—(करने वाली) यहाँ 'कृ' धातु से कर्ता अर्थ में 'ण्वुल' तृचौ से ण्वुल् प्रत्यय, वु को 'अक' आदेश तथा ऋकार को वृद्धि 'आर्' होकर कारक बनता है। कारक शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में अदन्त होने से अजाद्यतष्टाप् से 'टाप्' प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध लोप और सवर्ण दीर्घ होकर कारक बना। प्रत्यय के ककार के पूर्व अकार को प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः से इकार आदेश होकर कारिका सिद्ध होता है।

अतः किम् ? नौका—प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः इस सूत्र में अकार को इकार आदेश होता है, ऐसा क्यों कहा गया है ? वह इसलिए कि 'नौका' में प्रत्यय के ककार के पूर्व औकार के स्थान पर इकार आदेश न हो। 'नौ' शब्द से स्वार्थिक 'क' प्रत्यय, टाप् होकर 'नौका' रूप बनता है।

प्रत्ययस्थात् किम् ? शक्नोतीति शका प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः सूत्र में ककार प्रत्यय का हो, ऐसा क्यों कहा ? वह इसलिए कि शका में ककार से पूर्व अकार को इकार आदेश न हो। 'शका' में ककार प्रत्यय का नहीं धातु का है। 'पचादिगण' के अन्तर्गत 'शक्' से 'अच्' प्रत्यय, टाप् होकर 'शका' रूप बना।

असुपः किम् ? बहुपरिव्राजका नगरी—प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः सूत्र में आप् सुप् से परे न हो, ऐसा क्यों कहा ? वह इसलिए कि बहुपरिव्राजका (बहुत संन्यासी जहाँ हो वह नगरी) में अकार को इकार न हो। 'परिव्राजक' शब्द 'परि' उपपद पूर्वक 'व्रज्' धातु से 'ण्वुल्' प्रत्यय, वु को 'अक' आदेश होकर बना है। 'बहवः परिव्राजकाः सन्ति यस्यां नगर्याम् सा'। यहाँ बहु जस् परिव्राजक जस् इस अलौकिक विग्रह में अनेकमन्यपदार्थे से समास हुआ और प्रातिपदिक संज्ञा होकर सुप् प्रत्यय का लोप हुआ। अतः लुप्त 'सुप्' के बाद 'आप्' होने के कारण यहाँ अकार को इकार आदेश नहीं होता है। क्योंकि समास करके लोप किये गये प्रत्यय को प्रत्ययलक्षण से उपस्थित माना जाता है।

(वा०) सूर्याद् देवतायां चाप् वाच्यः।

वृत्ति—सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या। देवतायां किम् ?

अर्थ एवं व्याख्या—यह वार्तिक सूत्र है। सूर्य इस प्रातिपदिक पुंयोग में देवता स्त्रीत्व वाच्य होने पर 'चाप्' प्रत्यय होता है। यह पुंयोगादाख्यायाम् का अपवाद है। 'चाप्' प्रत्यय होता है। यह पुंयोगादाख्यायाम् का अपवाद है। 'चाप्' प्रत्यय में चुटू से च् की इत्संज्ञा, हलन्त्यम् से प् की इत्संज्ञा और तस्यलोपः से दोनों इत्संज्ञक वर्णों का लोप होकर 'आ' शेष बचता है।

सूर्या—('सूर्यस्त स्त्री देवता'—सूर्य कीदेवता जाति की स्त्री, छाया, सन्ध्या) यहाँ पुंयोग से स्त्री के अर्थ में सूर्य शब्द से 'पुंयोगादाख्यायाम्' से ङीष् प्रत्यय प्राप्त था किन्तु सूर्याद् देवतायां चाप् वाच्यः इस सूत्र से ङीष् का बाधकर चाप् प्रत्यय हुआ अनुबन्ध लोप होकर सूर्य + आ बनता है। अकः सवर्णे दीर्घः से सवर्ण दीर्घ होकर और स्वादि कार्य होकर सूर्या रूप सिद्ध होता है।

देवातायां किम् ? 'देवता' अर्थ में ही 'चाप्' हो, ऐसा क्यों कहा ? वह इसलिए कि यदि स्त्री मनुष्य जाति की हो तो वहाँ पर सामान्य ङीष् प्रत्यय होगा।

(वा०) सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्या च। यलोपः।

वृत्ति—सूरी कुन्ती, मानुषीयम्।

अर्थ एवं व्याख्या—यह भी वार्तिक है। छ और ङीष् प्रत्यय परे होने पर 'सूर्य' और 'अगस्त्य' शब्दों के उपधा के यकार का लोप हो जाता है।

सूरी—(सूर्यस्त स्त्री मानुषी—सूर्य की मनुष्य जाति की स्त्री, कुन्ती) यहाँ पुंयोग के द्वारा 'मनुष्य जाति की स्त्री' इस अर्थ में 'सूर्य' शब्द से पुंयोगादाख्यायाम् से ङीष् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर सूर्य + ई बना। यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप होकर

सूर्य् + ई बना। ङीष् के ईकार के परे होने पर सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च से यकार का लोप होकर सूर् + ई बना। स्वादि कार्य होकर सूरी रूप सिद्ध होता है।

१६. इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रूद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक् ४।१।४९।।

वृत्ति—एषामानुगागमः स्याद् ङीष् च। इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी। वरुणानी। भवानी। शर्वाणी। रुद्राणी। मृडानी।

अर्थ एवं व्याख्या—इन्द्र, वरुण, भव, रुद्र, मृड, हिम, अख्य, यव, यवन, मातुल और आचार्य इन बारह शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'ङीष्' प्रत्यय और आनुक् का आगम भी होता है।

आनुक् में क् और उ इत्संज्ञक है, आन् शेष रहता हैं और कित् होने के कारण यह आगम शब्दों के अन्त में होता है।

इन्द्राणी—(इन्द्रस्य स्त्री, इन्द्र की पत्नी) यहाँ 'इन्द्र' शब्द से इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रूद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक् से 'आनुक्' आगम और ङीष् प्रत्यय हुआ। आगम और प्रत्यय का अनुबन्ध लोप होकर इन्द्र + आन् + ई बना।। अकः सवर्णे दीर्घः से सवर्णदीर्घ होकर इन्द्रान् + ई बना। रषाभ्यां नो णः समानपदे से नकार का णकार आदेश होकर इन्द्राण् + ई बना। 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' से प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु का आगम और 'हल्ङ्याब्भ्योदीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्' से प्रत्यय का लोप होकर, वर्ण सम्मेलन कर इन्द्राणी रूप बनता है।

वरुणानी—(वरुण की स्त्री) वरुण शब्द से प्रकृत सूत्र से 'आनुक्' का आगम और 'ङीष्' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर वरुण + आन् + ई बना। सवर्ण दीर्घ होकर, सु प्रत्यय, प्रत्यय का लोप होकर 'इन्द्राणी' के समान ही 'वरुणानी' रूप बनता है। इसी प्रकार से शर्वस्य स्त्री शर्वाणी, रुद्रस्य स्त्री रुद्राणी, मृडस्य मृडानी रूप बनेंगे।

(वा०) हिमारण्ययोर्महत्वे। महद् हिमम् हिमानी, महद् अरण्यम् अरण्यानी।

अर्थ एवं व्याख्या—यह वार्तिक है। हिम (बर्फ) और अरण्य (जंगल) इन दो प्रातिपदिकों से महत्व अर्थात् बड़ा होना अर्थ में ही ङीप् प्रत्यय और आनुक् का आगम होता है।

हिमानी—(महद् हिमम्—अधिक वर्फ) यहाँ हिम शब्द से हिमारण्ययोर्महत्त्वे इस वार्तिक के अनुसार महत्त्व अर्थ में इन्द्र-वरुण-भव-शंव-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक् से आनुक् का आगम और ङीष् प्रत्यय हुआ। आगम और प्रत्यय का अनुबन्ध लोप होकर हिम + आन् + ई बना। अकः सवर्णे दीर्घः से सवर्ण दीर्घ होकर हिमान् + ई बना। अब सु प्रत्यय और प्रत्यय का लोप होकर 'हिमानी' रूप सिद्ध होता है।

अरण्यानी—(महद् अरण्यम्, बड़ा जंगल) यहाँ अरण्य शब्द से हिमारण्ययोर्महत्त्वे इस वार्तिक के अनुसार इन्द्र-वरुण-भव-शर्व०............सूत्र से आनुक् का आगम और ङीष् प्रत्यय होकर 'हिमानी' की तरह 'अरण्यानी' रूप सिद्ध होता है।

(वा०) यावाद् दोषे। दुष्टो यवो यावनी।

अर्थ एवं व्याख्या—यह वार्तिक है। दोष युक्त, इस अर्थ में 'यव' (जौ) इस प्रातिपदिक से 'ङीष्' प्रत्यय और 'आनुक' का आगम होता है।

यवानी—(दुष्टो यवः, दोषयुक्त जौ) यहाँ 'यव' शब्द से यवाद् दोषे इस वार्तिक के अनुसार 'दूषित' अर्थ में इन्द्र-वरुण-भव-शर्व०...........सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय और 'आनुक्' का आगम, अनुबन्ध लोप होकर यव + आन् + ई बना। सवर्ण दीर्घ, सु प्रत्यय और प्रत्यय का लोप होकर 'यवानी' रूप सिद्ध होता है।

(वा०) यवनात् लिप्याम्। यवनानां लिपिः यवनानी।

अर्थ एवं व्याख्या—यह वार्तिक है। 'यवन' शब्द से लिपि विशेष अर्थ में ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम होता है।

यवनानी—(यवनानां लिपिः—यवनों की लिपि) यहाँ 'यवन' शब्द से यवनात् लिप्याम् इस वार्तिक सूत्र के अनुसार लिपि अर्थ में इन्द्र-वरुण-भव-शर्व०........... से ङीष् प्रत्यय और आनुक का आगम, अनुबन्ध लोप होकर यवन + आन् + ई बना। अब सवर्ण दीर्घ, सु प्रत्यय, प्रत्यय का लोप होकर वर्ण सम्मेलन कर यवनानी रूप बनता है।

हिम, अरण्य और यव इन तीन शब्दों में पुंयोग असम्भव है। इसलिए विशेष अर्थों में इनका विधान किया गया है। 'यवन' शब्द में पुंयोग अर्थ में सामान्य सूत्र से ङीष् प्रत्यय होकर 'यवनी' रूप बनता है।

(वा०) मातुलोपाध्याययोरानुग् वा। मातुलानी, मातुली। उपाध्यायानी, उपाध्यायी।

अर्थ एवं व्याख्या—यह वार्तिक सूत्र है। मातुल (मामा) और उपाध्याय (गुरु) इन शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में पुंयोग में आनुक का आगम विकल्प से होता है। मातुल शब्द से ङीष् तो 'इन्द्रवरुण०...........सूत्र से ही होता है।

मातुलानी, मातुली—(मातुलस्य पत्नी, मामा पत्नी अर्थात् मामी) यहाँ 'मातुल' शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में इन्द्रवरुणभवशर्व०...........इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय और 'आनुक्' का आगम नित्य प्राप्त था किन्तु मातुलोपाध्याययोरानुग् वा इस वार्तिक से आनुक का आगम विकल्प से होता है। आगम और प्रत्यय का अनुबन्ध लोप होकर मातुल + आन् + ई बना। अब सवर्ण दीर्घ, सु प्रत्यय, प्रत्यय का लोप होकर मातुलानी रूप बनता है।

आनुक् के अभाव में सामान्य ङीष् प्रत्यय होकर 'मातुली' रूप सिद्ध होता है।

उपाध्यायानी, उपाध्यायी—(उपाध्यायस्य पत्नी—उपाध्याय (अध्यापक) की पत्नी) यहाँ पर 'उपाध्याय' शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में इन्द्रवरुणभव०...........इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय और 'आनुक्' का आगम नित्य प्राप्त था किन्तु मातुलोपाध्याययोरानुग् वा इस वार्तिक सूत्र से 'आनुक्' का आगम विकल्प से होता है। आगम और प्रत्यय का अनुबन्ध लोप होकर उपाध्याय + आन् + ई बना। अब सवर्ण दीर्घ, 'सु' प्रत्यय और

प्रत्यय का लोप होकर उपाध्यायानी रूप बनता है। आनुक् के अभाव में सामान्य 'ङीष्' प्रत्यय होकर 'उपाध्यायी' रूप सिद्ध होता है।

(वा०) आचार्याद् अणत्वं च।

वृत्ति—आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी।

अर्थ एवं व्याख्या—यह वार्तिक है। आचार्य शब्द से पुंयोग में ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम होता है और आनुक् के नकार को णत्व का निषेध होता है।

आचार्यानी—(आचार्यस्य स्त्री—आचार्य की पत्नी) यहाँ पर 'आचार्य' शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में इन्द्रवरुणभवशर्व०...........सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय और 'आनुक्' का आगम होता है। प्रत्यय और आगम का अनुबन्ध लोप होकर आचार्य + आन् + ई बना। सवर्ण दीर्घ करके आचार्यानी बना। रेफ से परे नकार होने पर नकार को णत्व प्राप्त था किन्तु 'आचार्याद् अणत्वं च' इस वार्तिक से निषेध हुआ। अब 'सु' प्रत्यय, प्रत्यय का लोप होकर 'आचार्यानी' रूप सिद्ध होता है।

जो स्वयं आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो उस स्त्री को आचार्या कहा जाता है, वहाँ अदन्त होने से 'टाप्' प्रत्यय होता है।

इस प्रकार जो स्त्री उपाध्याय की पत्नी न होती हुई स्वयं अध्यापन करती हो उसे उपाध्याया और उपाध्यायी कहा जाता है। यहाँ 'या तु स्वयमेवाध्यापिका तत्र वा ङीष् वाच्यः' इस वार्तिक से विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय होता है।

(वा०) अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे।

वृत्ति—अर्याणी, अर्या। क्षत्रियाणी, क्षत्रिया।

अर्थ एवं व्याख्या—यह वार्तिक है। 'अर्य' और 'क्षत्रिय' शब्दों से स्वार्थ में अर्थात् पुंयोग में नहीं, ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम विकल्प से होते हैं।

अर्याणी, अर्या—(अर्य अर्थात् वैश्य जाति की स्त्री) यहाँ अर्य शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में स्वार्थ में 'अर्यक्षत्रिभ्यां वा स्वार्थे' इस वार्तिक की सहायता से इन्द्रवरुणभवशर्व०...........से ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम हुआ। अनुबन्ध लोप होकर तथा सवर्ण दीर्घ होकर आर्यानी बना। रेफ से परे नकार को अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि से णत्व होकर आर्याणी बनता है। अब 'सु' प्रत्यय और प्रत्यय का लोप होकर आर्याणी रूप सिद्ध होता है। ङीष् प्रत्यय के अभाव पक्ष में अजाद्यतष्टाप् से 'टाप्' प्रत्यय होकर 'अर्या' रूप बनता है। पुंयोग में 'ङीष्' होने पर आर्यी रूप बनता है।

क्षत्रियाणी, क्षत्रिया—(क्षत्रिय जाति की स्त्री) 'क्षत्रिय' शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में अर्यक्षत्रिभ्यां वा स्वार्थे इस वार्तिक की सहायता से इन्द्रवरुणभवशर्व०.........…से ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम हुआ। अनुबन्ध लोप और सवर्ण दीर्घ होकर क्षत्रियानी बना। रेफ से परे नकार को णत्व होकर, सु प्रत्यय, प्रत्यय का लोप होने पर क्षत्रियाणी रूप सिद्ध होता है।

वार्तिक सूत्र से 'ङीष् प्रत्यय और 'आनुक्' का आगम विकल्प से था, अभाव पक्ष में अजाद्यतष्टाप् से 'टाप्' प्रत्यय होकर क्षत्रिया रूप बनता है।

१७. क्रीतात् करणपूर्वात ४।१।५०।।

वृत्ति—क्रीतान्ताद् अदन्तात् करणादेः स्त्रियां ङीष् स्यात्। वस्त्रक्रीती। क्वचिद् न-धन-क्रीता।

अर्थ एवं व्याख्या—क्रीत शब्द जिसके अन्त में हो तथा करण कारक जिसके आदि में हो, ऐसे अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है।

वस्त्रक्रीती—(वस्त्र से खरीदी हुई) वस्त्रैः क्रीता इस विग्रह में कर्तृकरणे कृता बहुलम् से समास हुआ। अतः करण पूर्व में है। क्रीत अन्त में है। 'वस्त्रक्रीत' शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में क्रीतात् करणपूर्वात् से ङीष् प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध लोप होकर वस्त्रक्रीत + ई बना। यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप, 'सु' प्रत्यय, प्रत्यय का लोप होकर वस्त्रक्रीती रूप सिद्ध होता है। क्वचिदिति—कहीं-कहीं यह ङीष् नहीं होता। जैसे—धन-क्रीता (धनेन क्रीता) यहाँ ङीष् न होकर टाप् प्रत्यय हुआ और 'धन्क्रीता' बना।

१८. स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ४।१।५४।।

वृत्ति—असंयोगोपधम् उपसर्जनंयत् स्वाङ्गम् तदन्ताद् अदन्तात् ङीष् वा स्यात्। केशान् अतिक्रान्ता अतिकेशी, अतिकेशा। चन्द्रमुखी चन्द्रमुखा। असंयोगोपधात् किम् ? सुगुल्फा। उपसर्जनात् किम् ? शिखा।

अर्थ एवं व्याख्या—जिसकी उपधा में संयोग न हो, ऐसा उपसर्जन (गौण) स्वाङ्गवाचक जो शब्द अन्त में हो, तदन्त अकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है।

स्वाङ्ग—शब्द का यहाँ पर अपना अङ्ग यह अर्थ नहीं है, अपितु पारिभाषिक अर्थ है। **महाभाष्यकार** ने इनके तीन लक्षण बताये हैं—

अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्गं, प्राणिस्थमविकारजम्।
अतस्थं तत्र दृष्टं च, तेन चेत्तत्तथायुतम्।।

१. **अद्रव**—अद्रव अर्थात् जो तरल न हो, मूर्तिमत्—अर्थात् साकार हो, प्राणिस्थ—प्राणियों में स्थित हो, अविकारज—जो विकार से उत्पन्न न हो। वह एक प्रकार का स्वाङ्ग होता है। इस लक्षण के अनुसार जब प्राणि के अङ्ग प्राणी में ही हों, तब वह स्वाङ्ग कहलाता है।

२. **अतस्थम्**—अभी उस प्राणी में ही रहता हो, पर तत्र दृष्टम्—कभी उस प्राणी में दिखायी दिया हो तो वह भी स्वाङ्ग कहलाता है। जैसे—प्राणी के अङ्ग केश आदि यदि राह में पड़े हों तो राह में न रहने वाले होकर भी राह में दिखायी पड़ने के कारण अर्थात् कभी उस प्राणी में स्थित थे तो उस समय वहाँ उसमें दिखायी देने के कारण ये दूसरे प्रकार के लक्षण का स्वाङ्ग है।

३. **तेन चेत्तत्तथायुतम्**—जैसे वह स्वाङ्ग प्राणी में होता है, वैसे ही अन्यत्र भी हो तो भी वह स्वाङ्ग कहलाता है। इस लक्षण के अनुसार मूर्तियों में वर्तमान अङ्ग भी प्राणी में स्थित अङ्ग के समान होने से तीसरा स्वाङ्ग कहा जाता है।

अतिकेशी, अतिकेशा—(केशान् अतिक्रान्ता—केशों को लाँघने वाली लम्बी माला आदि) अतिकेश शब्द में उपधा में संयोग नहीं, केश प्रथम लक्षण के अनुसार स्वाङ्गवाची है और वह अन्त में भी है ऐसे अतिकेश शब्द में स्वाङ्गच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् इस सूत्र से ङीष् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर अतिकेश + ई बना। अन्त्य अकार का लोप, स्वादि कार्य होकर अतिकेशी बना। ङीष् के अभाव पक्ष में टाप् प्रत्यय होकर अतिकेशा रूप बनता है।

चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा—(चन्द्र इव मुखं यस्याः—चन्द्रमा के समान मुख वाली) चन्द्रमुख शब्द से उपधा में संयोग नहीं है, मुख भी प्रथम लक्षण का स्वाङ्ग वाची है। और वह अन्त में भी है ऐसे चन्द्रमुख शब्द से स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् सूत्र से ङीष् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, स्वादिकार्य होकर चन्द्रमुखी बनता है। ङीष् के अभाव पक्ष में टाप् प्रत्यय होकर चन्द्रमुखा बन जाता है।

उपर्युक्त उदाहरणों में केश, मुख आदि स्वाङ्गवाचकों की उपधा में संयोग नहीं है, अतः असंयोगोपध होने से प्रकृत सूत्र की प्रवत्ति हुई।

असंयोगोपधात् किम् ? सुगुल्फा। यदि स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् में असंयोगोपधात् न पढ़ते तो स्वाङ्गवाची संयोगोपध सुगुल्फ आदि शब्दों से भी एक पक्ष में ङीष् होकर सुगुल्फी ऐसा अनिष्ट शब्द सिद्ध होने लगता। सुगुल्फ शब्द की उपधा में लकार और फकार का संयोग है। अतः संयोगोपध होने के कारण यहाँ ङीष् न होकर अदन्त से टाप् प्रत्यय हुआ और सुगुल्फा बना।

उपसर्जनात् किम् ? शिखा। यदि प्रकृत सूत्र में उपसर्जनात् इतना पद नहीं रखते तो शिखा शब्दों में भी एक पक्ष में ङीष् प्रत्यय होने लगता, क्योंकि 'शिखा' शब्द शीङः खो ह्रस्वश्च इस उणादि सूत्र से 'शीङ' धातु से 'ख' प्रत्यय और धातु के ह्रस्व होने पर 'टाप्' प्रत्यय से निष्पन्न होता है। यदि इस सूत्र में उपसर्जन नहीं कहा जाता तो स्वाङ्गवाची होने से 'शिख' शब्द से ङीष् प्रत्यय होकर शिखी ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता।

१९. न क्रोडादिबह्वचः ४।१।५६।।

वृत्ति—क्रोडादेर्बह्वचश्च स्वाङ्गान्न ङीष्। कल्याणक्रोडा। आकृतिगणोऽयम्। सुजधना।

अर्थ एवं व्याख्या—क्रोडोदिगण में पठित स्वाङ्गवाचकों तथा बह्वच् स्वाङ्गवाचक प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय नहीं होता है।

यह स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् का निषेध करता है।

कल्याणक्रोडा—(कल्याणी क्रोडा यस्याः, जिसके वक्षस्थल पर कल्याणजनक चिन्ह हो—ऐसी घोड़ी) यहाँ कल्याणक्रोड शब्द से स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् इस

सूत्र से ङीष् प्रत्यय प्राप्त था, किन्तु न क्रोडदिबह्वचः सूत्र से निषेध हुआ, और टाप् प्रत्यय होकर, स्वादि कार्य करने पर कल्याणक्रोडा बनता है।

सुजघना—(शोभनं जघनं यस्याः—सुन्दर जघनों वाली स्त्री) सुजघन शब्द में स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् इस सूत्र से ङीष् प्रत्यय प्राप्त था किन्तु न क्रोडादिबह्वचः से उसका निषेध हुआ और टाप् प्रत्यय होकर, स्वादिकार्य करने पर सुजघना बनता है।

२०. नखमुखात् संज्ञायाम् ४।१।५८।।

वृत्ति—न ङीष्।

अर्थ एवं व्याख्या—नख और मुख इन दो स्वाङ्गवाची शब्दों से संज्ञा में स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय नहीं होता है। अर्थात् स्वाङ्गवाची नख और मुख शब्द अन्त में हों ऐसे प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय नहीं होता है। यह सूत्र भी स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् सूत्र का निषेध करता है।

२१. पूर्वपदात्संज्ञायामगः ४।४।३।।

वृत्ति—पूर्वपदस्थानिन्नमत्तात्परस्य नस्य णः स्यात् संज्ञायां, न तु गकारख्यवधाने।
शूर्पणखा। गौरमुखा। संज्ञायांकिम् ? ताम्रमुखी कन्या।

अर्थ एवं व्याख्या—पूर्वपदस्थ निमित्त से परे नकार को णकार आदेश होता है किन्तु गकार के व्यवधान होने पर नहीं।

णत्व के लिए रेफ, षकार, और ऋकार का होना आवश्यक है। इन्हीं को निमित्त कहा गया है। ये पूर्वपद में हो तो परवर्ती नकार का णत्व आदेश होता है।

शूर्पणखा—(शूर्पाणीव नखानि यस्याः, अर्थात् सूप के समान जिसके नख है, यह एक राक्षसी का नाम है जो रावण की बहन थी) शूर्पनख शब्द से 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जना-दसंयोगोपधात् इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय प्राप्त था, किन्तु उसका नखमुखात् संज्ञायाम से निषेध हुआ। तब अजाद्यतष्टाप् से टाप् प्रत्यय हुआ। यहाँ पर संज्ञा (नाम) होने के कारण पूर्वपदात्संज्ञायामगः से णत्व हुआ। स्वादिकार्य होकर शूर्पणखा रूप सिद्ध होता है।

गौरमुखा—(गौरं मुखं यस्याः, गौरमुख नाम वाली स्त्री) गौरमुख शब्द से स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् इस सूत्र से ङीष् प्राप्त था, किन्तु नखमुखात् संज्ञायाम् से उसका निषेध हुआ और अजाद्यतष्टाप् से टाप् प्रत्यय, स्वादिकार्य होकर गौरमुखा रूप सिद्ध होता है।

संज्ञायां किम् ? यदि 'नखमुखात् संज्ञायाम्' इस सूत्र में संज्ञायाम् यह पद न होता तो संज्ञा में भी निषेध होता और असंज्ञा में भी निषेध होता, जिससे ताम्रमुखी में ङीष् का निषेध होकर 'ताम्रमुखा' ऐसा रूप बनता है। यहाँ पर 'संज्ञायाम्' होने से विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय होकर ताम्रमुखी बनता है। और 'ङीष्' के अभाव पक्ष में टाप् प्रत्यय होकर ताम्रमुखा ये दो रूप बनते हैं।

२२. जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ४।१।६३।।

वृत्ति—जातिवाचि यत् न च स्त्रियां नियतम्, अयोपधं, ततः स्त्रियां ङीष् स्यात्। तटी। वृषली। कठी। वह्वृची। जातेः किम् ? मुण्डा। अस्त्रीविषयात् किम् ? बलाका। अयोपधात् किम् ? क्षत्रिया।

अर्थ एवं व्याख्या—जो शब्द जातिवाचक हो, नित्य स्त्रीलिङ्ग न हो, उसकी उपधा में यकार न हो, ऐसे अदन्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय होता है।

अर्थात् स्वाङ्ग के समान जाति शब्द भी पारिभाषिक है। इसके चार लक्षण बताये गये हैं—

आकृतिग्रहणा जातिः, लिङ्गानां न च सर्वभाक्।
सकृदाख्यातनिग्राह्या, गोत्रं च चरणैः सह।।

१. **आकृतिग्रहणा जातिः**—आकृति से पहचानी जाने वाली 'जाति' होती है। कहने का तात्पर्य है कि आकृति विशेष जिसका व्यञ्जक होता है उसे 'जाति' कहते हैं।

२. **लिङ्गानां न च सर्वभाक्, सकृदाख्यातनिग्राह्या**—किसी व्यक्ति में जिसके एक बार कथन से अन्य अनेक व्यक्तियों में जिसका बोध हो जाये, तो उसे भी 'जाति' समझना चाहिए परन्तु ऐसा शब्द स्त्रीलिङ्ग अर्थात् सर्वलिङ्गी नहीं होना चाहिए।

३. **गोत्रम्**—गोत्र अर्थात् अपत्य-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक भी एक 'जाति' है।

४. **चरणै सह**—चरणवाची (वेदशाखा के अध्येता का वाचक) प्रातिपदिक भी एक जाति ही है।

उक्त चारों प्रकार की जातियों के उदाहरण क्रमशः हैं—

१. तटी, सूकरी, २. वृषली, ३. औपगवी और ४. कठी, बह्वृची।

तटी—(नदी का किनारा) तट जातिवाचक संज्ञा है यह नित्यस्त्रीलिङ्ग भी नहीं है, इसकी उपधा में यकार भी नहीं है, अतः तट शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय होकर, अनुबन्ध लोप होकर तट + ई बना। अन्त्य अकार का लोप तथा स्वादि कार्य होकर तटी रूप बनता है।

वृषली—(शूद्र जाति की स्त्री) यहाँ वृषल शूद्र जाति है, अतः वृषल शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् सूत्र से ङीष् प्रत्यय, अन्त्य अकार का लोप, स्वादि कार्य होकर वृषली रूप बनता है।

कठी—(कठेन प्रोक्तमधीयाना अर्थात् कठ शाखा को पढ़ने वाली) यहाँ कठ शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् से ङीष् प्रत्यय होकर, अनुबन्ध लोप होकर कठ + ई बना। अन्त्य अकार का लोप, स्वादि कार्य होकर कठी रूप बनता है।

बह्वृची—(बह्वृचशाखामधीयाना अर्थात् बह्वृचशाखा को पढ़ने वाली) यहाँ बह्वृच वेद की एक शाखा है, अतः बह्वृच शब्द से जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् सूत्र से ङीष् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, अन्त्य अकार का लोप, स्वादिकार्य होकर बह्वृची रूप बनता है।

औपगवी—(उपगोरपत्यं स्त्री—उपगु की स्त्री-जाति सन्तान) यहाँ अणन्त होने से टिड्ढाणञ्०.........से प्राप्त ङीष् को बाधकर जातिलक्षण ङीष् होने पर यह रूप बनता है।

जातेः किम् ? मुण्डा–जातेरस्त्रीविषयदयोपधात् इस सूत्र में जाते यह पद क्यों दिया ? वह इसलिए कि यदि यह पद नहीं कहा जाता तो यह सूत्र जाति और अजाति दोनों में ही ङीष् करता। जैसे–मुण्डा (मुँड़ी हुई) यहाँ ङीष् न हो। मुण्ड शब्द अजातिवाचक है यदि इससे ङीष् होता तो मुण्डी ऐसा अनिष्ट रूप बनता। फलतः ङीष् न होकर टाप् प्रत्यय होकर मुण्डा रूप बनता है।

अस्त्रीविषयात् किम् ? बलाका–(पक्षीविशेष) नित्य स्त्रीलिङ्ग न हो ऐसा क्यों कहा ? इसलिए कि 'बलाका' में ङीष् न हो 'बलाका' शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग है, अतः इससे जातिवाचक ङीष् होकर 'बलाकी' ऐसा अनिष्ट रूप बनता है। फलतः यहाँ पर 'टाप्' प्रत्यय होकर 'बलाका' रूप बनता है।

अयोपधात् किम् ? क्षत्रिया–(क्षत्रिय जाति की स्त्री) यकार उपधा में न हो, ऐसा क्यों कहा ? इसलिए कि क्षत्रिया में जातिलक्षण ङीष् न हो। क्षत्रिय शब्द जातिवाचक है, पर इसकी उपधा में यकार होने से ङीष् न होकर टाप् हुआ और क्षत्रिया रूप बना।

(वा०) योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः।
हयी। गवयी। मुकयी।
हलस्तद्धितस्येति यलोपः।मनुषी।
(वा०) मत्स्यस्य ङ्याम्। यलोपः।मत्सी।

अर्थ एवं व्याख्या–यह वार्तिक है। इस सूत्र के अनुसार योपध में ङीष् के निषेध में हय, गवय, मुकय, मनुष्य और मत्स्य इस शब्दों में निषेध न हो, अर्थात् ङीष् होकर हयी, गवयी, मुकयी, आदि रूप बन सकें।

हयी–(घोड़ी) गवयी (नील गाय) मुकयी (खच्चरी) ये तीनों शब्द पुल्लिङ्ग में क्रमशः हय, गवय और मुकय हैं, और इनकी उपधा में यकार है, इनसे स्त्रीत्व की विवक्षा में योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः इस वार्तिक की सहायता से ङीष् प्रत्यय होकर हयी, गवयी, मुकयी सिद्ध होते हैं।

मनुषी–(मनुष्य जाति की स्त्री) मनुष्य शब्द से योपध होने पर भी प्रकृत वार्तिक की सहायता से ङीष् प्रत्यय हुआ, अनुबन्ध लोप होकर मनुष्य + ई बना। अन्त्य अकार का लोप, हलस्त द्धितस्य से यकार का लोप होकर मनुष् + ई बना। स्वादिकार्य होकर मनुषी रूप बनता है।

मत्स्यस्य ङ्याम्–यदि 'मत्स्य' शब्द में यकार का लोप हो तो केवल ङी (ङीप् तथा ङीष्) के परे होने पर हो, अन्य के परे होने पर नहीं।

मत्सी–(मादा मछली) यहाँ मत्स्य शब्द से यकारोपध होने पर भी योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः और मत्स्यस्य ङ्याम् इन दो वार्तिकों की सहायता से ङीष् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर मत्स्य + ई बना। अन्त्य अकार का लोप तथा हलस्तद्धितस्य से यकार का लोप, स्वादिकार्य होकर मत्सी रूप बनता है।

२६. इतो मनुष्यजातेः ४।१।६५।।

वृत्ति—ङीष्। दाक्षी।

अर्थ एवं व्याख्या—मनुष्यजातिवाचक ह्रस्व इकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है।

जातेरस्त्रीविषयाद्—इत्यादि सूत्र अदन्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय करते है, वे इकारान्त के विषय में प्राप्त नहीं थे। अतः प्रकृत सूत्र से इकारान्त प्रातिपदिक से उसका विधान किया गया है।

दाक्षी—(दक्षस्यापत्यं स्त्री, दक्ष की कन्या) यहाँ दक्ष शब्द से अपत्य अर्थ में 'अत इञ्' इस सूत्र से 'इञ्' प्रत्यय होकर दाक्षि शब्द बनता है। इकारान्त 'दाक्षि' शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में इतो मनुष्यजातेः से ङीष् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर दाक्षि + ई बना। अब भसंज्ञक इकार का लोप और स्वादिकार्य होकर 'दाक्षी' रूप बनता है।

(ऊङ् प्रत्यय—विधि सूत्रम्)

२४. ऊङ्तः ४।१।६६।।

वृत्ति—उदन्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियामूङ्स्यात् कुरुः। अयोपधात् किम् ? अध्वर्युर्ब्राह्मणी।

अर्थ एवं व्याख्या—जिसकी उपधा में अकार न हो ऐसे मनुष्यवाची उदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'ऊङ्' प्रत्यय होता है।

ऊङ् प्रत्यय में हलन्त्यम् से ङकार की इत्संज्ञा होकर केवल 'ऊ' शेष रहता है।

कुरुः—(कुरुजातेः सत्री, कुरु जाति की स्त्री) संज्ञा होने से कुरु शब्द जातिवाचक है, इसकी उपधा में यकार भी नहीं है। अतः उकारान्त अयोपध मनुष्य जातिवाचक कुरु शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ्तः से ऊङ् प्रत्यय अनुबन्ध लोप होकर कुरु + ऊ बना। सवर्ण दीर्घ, सु प्रत्यय और रुत्व विसर्ग होकर कुरुः शब्द बनता है। ऊवर्णान्त स्त्रीलिङ्गी शब्द से सु प्रत्यय का लोप न होकर रुत्वविसर्ग होता है।

अयोपधात् किम् ? अध्वर्युर्ब्राह्मणी—यकारोपध न हो, ऐसा क्यों कहा ? इसलिए कि 'अध्वर्युः ब्राह्मणी' (अध्वर्यु शाखा को पढ़ने वाली) यहाँ 'अध्वर्युः' में 'ऊङ्' न हो। शाखा वाचक होने से अध्वर्यु शब्द जाति वाचक है, वेद की एक शाखा है, उपधा में यकार है 'ऊङ्' प्रत्यय होकर 'अध्वर्यूः' ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता है। अतः 'अयोपधात्' कहा गया।

२५. पङ्गोश्च ४।१।६८।।

वृत्ति—पङ्गूः।

(वा०) श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च।श्वश्रूः।

अर्थ एवं व्याख्या—'पङ्गु' इस प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय होता है।

'पङ्गु' शब्द गुणवाचक है, जातिवाचक नहीं।

अतः उङ्तः से ऊङ् प्राप्त नहीं था।

पङ्गूः—(लंगड़ी स्त्री) यहाँ पङ्गु शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में पङ्गोश्च से ऊङ् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर पङ्गु + ऊ बना। सवर्ण दीर्घ, सु प्रत्यय और रुत्व विसर्ग होकर पङ्गूः रूप सिद्ध होता है।

(वा०) श्वशुरस्यो०........... यह वार्तिक है। श्वशुर शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय के साथ शकार से परे उकार और रकार से परे अकार का लोप होता है।

श्वश्रूः—(श्वशुर की स्त्री, सास) यहाँ श्वशुर शब्द से श्वशुर स्योकाराकारलोपश्च से ऊङ् प्रत्यय और 'शु' के उकार और 'र' के अकार का लोप होने पर श्वश्र् + ऊङ् बना। अनुबन्ध लोप होकर तथा वर्ण सम्मेलन कर श्वश्रू बना। सु प्रत्यय, रुत्वविसर्ग होकर श्वश्रूः रूप बनता है।

२६. ऊरूत्तरपदादौपम्ये ४।१।६९।।

वृत्ति—उपमानवाची पूर्वपदमूरूत्तरपदं यत्प्रातिपदिकं तस्मादूङ्स्यात्। करभोरुः।

अर्थ एवं व्याख्या—जिसका पूर्वपद उपमानवाची तथा अन्तरपद ऊरु हो तो उससे स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङू प्रत्यय होता है।

करभोरुः (करभौ इस ऊरु यस्याः, करभ के समान जंघा वाली स्त्री) यहाँ पूर्वपद 'करभ' उपमान है और उत्तर पद ऊरु है अतः करभोरु शब्द से ऊरुत्तरपदादौपम्ये से 'ऊङ्' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, सवर्ण दीर्घ, सु प्रत्यय और रुत्वविसर्ग होकर करभोरुः रूप बनता है।

२७. संहितशफलक्षणवामादेश्च ४।१।७०।।

वृत्ति—अनौपम्यार्थं सूत्रम्। संहितोरुः। शफोरूः। लक्षणोरुः। वामोरुः।

अर्थ एवं व्याख्या—संहित, शफ, लक्षण, वाम ये आदि में हों और ऊरु उत्तर पद में हो ऐसे प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'ऊङ्' प्रत्यय होता है।

यह सूत्र अनौपम्य के लिए है अर्थात् जब पूर्वपद उपमान न हो, तब यह सूत्र प्रवृत्त होगा। पूर्वपद उपमान होने पर पूर्व सूत्र से ही ऊङ् प्रत्यय होगा। संहित आदि शब्द उपमान नहीं है अतः प्रकृत सूत्र से इसका विधान किया गया है।

संहितोरूः—(संहितौ ऊरु यस्याः (खुर) जिसके ऊरू मिले हुए हों) शफोरुः (शफौ ऊरु यस्याः (खुर) जिसके ऊरु अच्छे हुए हों। लक्षणोरुः (लक्षणौ ऊरु यस्याः, जिसके ऊरु सुन्दर हों) ये शब्द संहितोरु, शफोरु, लक्षणों रु और वामोरु शब्दों से प्रकृत सूत्र से ऊङ् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, सवर्ण दीर्घ, सु प्रत्यय और रुत्वविसर्ग होकर संहितोरूः, शफोरः, लक्षणोरुः और वामोरूः रूप सिद्ध होते हैं।

(ङीन प्रत्यय—विधि सूत्रम्)

२८. शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ४।१।७३।।

वृत्ति—शार्ङ्गरवादेः अञो योऽकारः तदन्ताच् जातिवाचिनो ङीन् स्यात्। शार्ङ्गरवी। बैदी। ब्राह्मणी।

अर्थ एवं व्याख्या–शार्ङ्गरव आदि गण में पठित शब्दों तथा अञ् प्रत्यय अन्त में हो ऐसे जातिवाचक प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीन् प्रत्यय होता है।

ङीन् प्रत्यय में लशक्वतद्धिते से ङकार की इत्संज्ञा तथा हलन्त्यम् से नकार की इत्संज्ञा होकर तस्यलोपः से दोनों का लोप होकर केवल ईकार शेष रहता है।

ङीन् प्रत्ययान्त शब्द नित् होने से आद्युदात्त होता है। इस प्रकार ङीप्, ङीष्, ङीन् इन तीनों के ईकार रूप होने पर भी स्वर में अन्तर है।

शार्ङ्गरवी–(शृङ्गरोपरपत्यंस्त्री, शृङ्गरू की स्त्री-सन्तान) शार्ङ्गरव शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में शार्ङ्गरवद्यञो ङीन् से ङीन् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, यस्येति च से अन्त्य अकार का लोप होकर शार्ङ्गरव् + ई बना। सु प्रत्यय, प्रत्यय का लोप होकर शार्ङ्गरवी रूप बनता है।

बैदी–(विदस्य अपत्यं स्त्री–बिद की स्त्री सन्तान) यहाँ अनृष्यान्नतर्ये बिदादिभ्योऽञ् से अञ् प्रत्यय होकर तथा आदि वृद्धि होकर 'बैद' शब्द बनता है। बैद शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में शार्ङ्गरवद्याञो ङीन् से ङीन् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, अन्त्य अकार का लोप, सु, प्रत्यय, प्रत्यय का लोप होकर बैदी शब्द बनता है।

ब्राह्मणी–(ब्राह्मणजातीया स्त्री, ब्राह्मण जाति की स्त्री) ब्राह्मण शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में शार्ङ्गरवद्यञो ङीन् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, अन्त्य अकार का लोप, सु प्रत्यय, प्रत्यय का लोप होकर ब्राह्मणी रूप बनता है।

(वा०) नृनरयोर्वृद्धिश्च।

वृत्ति–नारी।

अर्थ एवं व्याख्या–यह वार्तिक है। 'नृ' और 'नर' इन दो जातिवाचक शब्दों से भी स्त्रीत्व की विवक्षा में 'ङीन्' प्रत्यय होता है साथ ही प्रकृति में वृद्धि भी होती है।

नारी–(नरजातीया स्त्री) 'नृ' और नर इन दोनों शब्दों से नृनरयोर्वृद्धिश्च से ङीन् प्रत्यय और 'नृ' के ऋकार और 'नर' के आदि अकार को वृद्धि होकर नार् + ई और नार + ई बना। द्वितीय 'नार' शब्द के अन्त्य अकार का लोप करके, दोनों में सु प्रत्यय और प्रत्यय का लोप होकर 'नारी' रूप बनता है।

(ति-प्रत्यय-विधि सूत्रम्)

२९. यूनस्तिः ४।१।७७।।

वृत्ति–'युवन्' शब्दात् स्त्रियां 'ति' प्रत्ययः स्यात्। युवति।

अर्थ एवं व्याख्या–'युवन्' शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'ति' प्रत्यय होता है।

युवतिः–(युवावस्था वाली स्त्री) यहाँ युवन् शब्द से यूनस्तः सूत्र से 'ति' प्रत्यय होकर युवन् + ति बना। स्वादिष्वसर्वनामस्थाने से ति के परे रहते युवन् की पदसंज्ञा करके न लोपः प्रतिपदिकान्तस्य से नकार का लोप होकर युव + ति बना। 'सु' प्रत्यय होकर और प्रत्यय रुत्व-विसर्ग होकर युवतिः रूप बनता है। यहाँ सु की प्राप्ति ङ्याप्प्रतिपदिकात् से होकर प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम् परिभाषा से होगी। ऊङ् प्रत्ययान्त शब्दों में भी इसी से 'सु' आदि प्रत्यय लगेंगे।

।।इति स्त्रीप्रत्यय-प्रकरणम्।।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

- **बहुविकल्पीय**

१. अजाद्यतष्टाप् से टाप् प्रत्यय होता है—
(अ) अजादिगण में पठित शब्दों से, (ब) तुदादिगण में पठित शब्दों से,
(स) चुरादिगण में पठित शब्दों से, (द) इनमें से कोई नहीं।

२. भवती में ङीप् प्रत्यय होता है—
(अ) उगितश्च सूत्र से, (ब) यञश्च सूत्र से,
(स) द्विगोः सूत्र से, (द) वयसि प्रथमे सूत्र से।

३. औत्सी में प्रकृति प्रत्यय है—
(अ) औत्स + ङीष्, (ब) औत्स + ङीप्,
(स) औत्स + ङीन्, (द) औत्स + ई।

४. स्त्रीत्व की विवक्षा में यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से परे ङीप् प्रत्यय होता है।
(अ) हलतद्धितस्य से, (ब) पंगोश्च से,
(स) षिदगौरादिभ्यश्च से, (द) यञश्च से।

५. 'हलस्तद्धितस्य' सूत्र से हल् से परे उपधाभूत—
(अ) वकार का लोप, (ब) तकार का लोप,
(स) यकार का लोप, (द) ००।

६. गौरी में प्रत्यय है—
(अ) ङीष्, (ब) ङीन्, (स) ई, (द) ङी।

७. कुमारी शब्द में ङीप् प्रत्यय हुआ—
(अ) षिद्गौरादिभ्यश्च सूत्र से, (ब) वयसि प्रथमे सूत्र से,
(स) उगितश्च सूत्र से, (द) इनमें से कोई नहीं।

८. मृद्वी में प्रत्यय है—
(अ) ङीन्, (ब) ङीप्, (स) ऊङ्, (द) ङीष्।

९. वोतोगुणवचनात् सूत्र से ङीष् प्रत्यय होकर बनता है—
(अ) रात्री, (ब) त्रिलोकी,
(स) पट्वी, (द) ये सभी।

१०. 'गोपी' में प्रकृति प्रत्यय है—
(अ) गोप + ङीष्, (ब) गोपी + ङी,
(स) गोप + ई, (द) गोप + ङीप्।

११. गोपालिका में प्रकृति प्रत्यय है—
(अ) गोपालिका + आ, (ब) गोपालक + ङीप्,
(स) गोपालिक + चाप्, (द) गोपालक + टाप्।

१२. सूर्या में प्रत्यय है—

(अ) टाप्, (ब) चाप्, (स) आप्, (द) आ।

१३. शूर्पणखा में णत्व होता है—

(अ) नखमुखत सञ्ज्ञायाम, (ब) पूर्वपदात् संज्ञायामगः,

(स) दोनों से, (द) इनमें से कोई नहीं।

१४. इतो मनुष्यजातेः से ङीष् प्रत्यय होकर बना—

(अ) दाक्षी, (ब) पालकी, (स) तटी, (द) गौरमुखी।

१५. कुरूः में प्रत्यय है—

(अ) कुरु + ऊङ्, (ब) कुरु + ऊ,

(स) कुर् + ऊ, (द) कुर् + ऊङ्।

१६. पङ्गु शब्द है—

(अ) गुणवाचक, (ब) जातिवाचक,

(स) दोनों, (द) इनमें से कोई नहीं।

१७. शफोरूः में प्रकृति प्रत्यय है—

(अ) शफो + रूः, (ब) शफर् + उ,

(स) शफ् + ऊ, (द) शफोरू + ऊङ्।

१८. युवति बनता है—

(अ) युव् + ति, (ब) यु + वति,

(स) युवन् + ति, (द) युव् + अति।

१९. ति प्रत्यय विधायक सूत्र है—

(अ) यूनस्तिः, (ब) यञ्जस्ति,

(स) युनस्ति, (द) इनमें से कोई नहीं।

२०. नदी शब्द में प्रत्यय है—

(अ) ङीष्, (ब) ङीप्, (स) ङीन्, (द) डीन्।

उत्तरमाला

१. (अ), २. (अ), ३. (ब), ४. (द), ५. (स), ६. (अ), ७. (ब), ८. (द), ९. (स), १०. (अ), ११. (द), १२. (ब), १३. (ब), १४. (अ), १५.(अ), १६. (अ), १७. (द), १८. (स), १९. (अ), २०. (ब)।

- **लघु उत्तरीय**

१. 'स्त्रियाम्' सूत्र की व्याख्या कीजिये।

२. 'अजाद्यतष्टाप' सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये।

३. भवती और दीव्यन्ती की सूत्र सहित सिद्धि कीजिये।

४. सौपर्णेय में कौन-सा प्रत्यय है सूत्र सहित सिद्धि कीजिये।
५. स्त्रैणी के प्रकृति प्रत्यय को बताते हुए सूत्र की व्याख्या कीजिये।
६. 'यञ्श्च' सूत्र की व्याख्या कीजिये।
७. नर्तकी की सूत्र सहित सिद्धि कीजिये।
८. कुमारी का प्रकृति प्रत्यय बताते हुए सूत्र सहित सिद्धि कीजिये।
९. इन्द्राणी और भवानी की सिद्धि करते हुए सूत्र की व्याख्या कीजिये।
१०. 'नखमुखात् सञ्ज्ञायाम्' सूत्र की व्याख्या कीजिये।
११. 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' सूत्र की व्याख्या करते हुए एक उदाहरण दीजिये।
१२. 'मत्सी' की सूत्र सहित सिद्धि कीजिए।
१३. 'शूर्पणखा' की सिद्धि कीजिए।
१४. 'इतो मनुष्यजातेः' सूत्र की व्याख्या कीजिए।
१५. 'ऊङुतः' सूत्र की व्याख्या कीजिए।
१६. 'ङीन् प्रत्यय विधायक सूत्र की व्याख्या कीजिए।
१७. 'नारी' का प्रकृति प्रत्यय बताते हुए सूत्र सहित रूप की सिद्धि कीजिए।
१८. यूनस्तिः सूत्र की व्याख्या करते हुए उदाहरण भी दीजिए।
१९. 'वोतो गुणवचनात्' सूत्र की व्याख्या कीजिए।
२०. मुनित्रयी का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
२१. अष्टाध्यायी के व्याख्याकारों का नामोल्लेख कीजिये।
२२. वरदराज आचार्य का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
२३. व्याकरण किसे कहते हैं ? स्पष्ट कीजिए।
२४. वार्तिककार कात्यायन एवं महाभाष्यकार पतञ्जलि का परिचय दीजिये।

- **दीर्घ उत्तरीय**

१. स्त्री प्रत्यय के अधिकार सूत्र की व्याख्या कीजिये।
२. पौंस्नी, तरुणी और तलुनी की सूत्र सहित सिद्धि कीजिये।
३. 'हलस्तद्धितस्य' सूत्र की व्याख्या कीजिये।
४. 'यञश्च' सूत्र की व्याख्या कीजिये।
५. 'प्राचाष्फ तद्धितः' सूत्र की व्याख्या कीजिये।
६. 'द्विगोः' सूत्र को उदाहरण सहित लिखिए।
७. 'कृदिकारादक्तिनः' सूत्र की व्याख्या करते हुए उदाहरण की पूर्ण सिद्धि कीजिए।
८. 'पालकान्तान्न' इस वार्तिक सूत्र की व्याख्या करते हुए एक उदाहरण भी दीजिये।

✤